❀ ओ३म् ❀

माँ—गायत्री

१०१ गायत्री मंत्रों की
अर्थ सहित आध्यात्मिक व्याख्या

—: ✻ :—

—लेखक—

श्री पं० शिवदयालु जी

—

जन—ज्ञान—प्रकाशन
नई दिल्ली-५

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक में गायत्री छन्द वाले १०१ वेद-मन्त्रों का संग्रह किया गया है।

गायत्री छन्द तीन पाद वाला होता है और प्रत्येक पाठ में ८ अक्षर होते हैं। किसी-किसी मन्त्र में एक अक्षर न्यून वा अधिक होता है ऐसे मन्त्रों को निचृद् वा बृहती गायत्री छन्द वाला क्रमशः माना जाता है।

इस पुस्तक में हमने ऐसे मन्त्रों को ही चुना है जो प्रधानरूप से आध्यात्मिक अर्थों के बोधक हैं और ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना की दृष्टि से उनकी विशेष उपयोगिता है।

मन्त्र-चयन करते समय इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि मन्त्र सुबोध हों, सुगमता से उनका अर्थ हृदयंगम हो सके और पाठक उनको सरलता से कण्ठस्थ कर सकें।

मन्त्रों को अकारादि क्रम से रखना भी हमारा प्रयास रहा है।

प्रत्येक मन्त्र का शब्दार्थ देकर हमने उसका भावार्थ भी सरल भाषा में अंकित किया है जिससे सर्वसाधारण जनता इससे लाभ उठा सके। हमें विश्वास है कि यह "गायत्री शतकम्" वेदाभिमानियों के स्वाध्याय के लिए विशेषरूप से लाभकारी होगा।

आर्य वानप्रस्थाश्रम
ज्वालापुर (सहारनपुर)

शिवदयालु आर्य

१

ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यम् ।
भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

शब्दार्थ—(सवितुः देवस्य) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता, कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय कराने हारे परमात्मा का (वरेण्यं भर्गः) जो अति श्रेष्ठ, ग्रहण और ध्यान करने योग्य, सब क्लेशों को भस्म करने हारा, पवित्र शुद्ध स्वरूप है (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) यह परमात्मा (नः धियः) हमारी बुद्धियों को उत्तम गुण-कर्म स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे ।

भावार्थ—वह प्यारा प्रभु सकल दिव्य गुणों का केन्द्र है । उसका दान-सत्र अपनी शाश्वत प्रजाओं के लिए निरन्तर चल रहा है । वही सकल जगत् का सृजनहार है । सूर्य, ध्रुव, स्वाति आदि नक्षत्रों को प्रकाशयुक्त करता और उनके माध्यम से असंख्य ग्रह-उपग्रहों को भी प्रकाशयुक्त करता है, सब प्रकार के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक ऐश्वर्यों का वही दाता है वही एकमात्र कमनीय, बन्दनीय, अर्चनीय और उपासनीय है । उसकी भक्ति और उपासना मानव के जीवन को विजयी बनाती है । काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि असुरों पर विजय प्राप्त करने की क्षमता मानवों को उसकी सच्ची उपासना से प्राप्त होती है । उस प्रभु का तेज महान् है, मानव की सकल दुर्वासनाओं, कुवृत्तियों को दग्ध करने वाला है । उसका सच्चा उपासक इन वासना वृत्तियों से ऊपर उठ जाता है, और अत्यन्त स्पृहणीय उसके दिव्य तेज के पावन आलोक में दैवत्व को प्राप्त होता है । पावन प्रभु का पावन भर्ग मानव के सकल कलमषों को दूर करता और दिव्य गुणों का उसमें सञ्चार करता है । जीवन के सर्व पापतापों को हरने वाला उसका यह महान् तेज ही है । इसी तेज के बल पर संसार में बड़े-बड़े अन्यायी अत्याचारियों से हम लोहा लेने में समर्थ होते हैं । प्रभु का तेज अन्याय, अनीति, अनाचार पर न्याय,

नीति और सदाचार की विजय कराने हारा है। हम ध्यान योग में अवस्थित हो उस प्राणप्रिय सखा के दिव्य तेज का सतत चिन्तन करेंगे उसकी आभा, दीप्ति व कान्ति से अपनी अन्तरात्मा को चमत्कृत करेंगे। दैवी प्रकाश की किरणें हमारी जीवन नौका को देदीप्यमयी बनावेंगी। उसी दिव्य प्रकाश के आधार पर हम अपनी इस आठ चक्र और नौ दरवाजे वाली पुरी को अयोध्या बनावेंगे। प्रभु के दिव्य तेज का सम्बल पा हम इस दैवी नौका को भवसागर से पार खेकर ले जावेंगे जहाँ दिव्य आनन्द, मोद, प्रमोद, हर्ष और शान्ति का साम्राज्य है।

हमारी उस अनाथों के नाथ, अबलों के सम्बल, पतितों के पावनहार प्रभु से यही एकमात्र विनय है कि वह हमारी बुद्धियों को शुद्ध करें, पवित्र करें। बुद्धियों पर अज्ञान का आवरण आ गया है परमात्म-देव उसको दूर हटादो। हमारी बुद्धि को ज्योतिष्मती बनादो दिव्य प्रकाश से युक्त करदो। हम इस बुद्धि की सहायता से साधना में रत होकर दिव्य देव के आनन्द धाम में प्रवेश पाने के अधिकारी बनेंगे। यह हमारी बुद्धि ऋतम्भरा बन जाए। परमात्मा के सत्यज्ञान से प्रदीप्त हो उठे और हम अपने हृदय की गुफा में उसके दिव्य दर्शन करने वाले बन जायें।

मानव की विशेषता बुद्धितत्त्व ही के कारण है। जितनी अधिक यह हमारी बुद्धि शुद्ध, पवित्र व परिष्कृत होगी उतना ही अधिक हमारा यह जीवन पवित्र बनेगा। ज्योतिष्मती बुद्धि हमें ब्रह्म के दिव्य आलोक का दर्शन करने की क्षमता प्रदान करेगी। अतः हमारी उस प्राणप्रिय चिरन्तन सखा से केवल यही विनति है कि वह हमारी बुद्धि को निर्मल बना दें। हम निरन्तर बुद्धि की निर्मलता के निमित्त ही अपने उस प्यारे पूज्य पिता से सायं प्रातः सन्धि वेला में विशेष रूप से विनति करेंगे।

नाथ! कृपा करो अपने उपासकों की विनति स्वीकार करो, स्वीकार करो।

२

ओं अग्न आयूंषि पवस ।
आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।। साम ६ । ५ । १

शब्दार्थ—(अग्ने) हे पूजनीय, विश्व-नियन्ता, सर्वव्यापक, प्रकाश स्वरूप परमात्मा (नः) हम सब अपने उपासकों की (आयूंषि) जीवनों की (पवस) रक्षा करो (ऊर्जं) उत्तम जीवन शक्ति एवं मनोबल तथा (इषं) अन्न हमें (आसुव) प्रदान करो और (दुच्छुनाम्) दुष्टजनों को हमसे (आरे) दूर (बाधस्व) रखो ।

भावार्थ—घट-घट व्यापी परमात्मदेव सदा मानवों को दुष्ट कर्मों से बचने और श्रेष्ठ कर्मों के आचरण करने की प्रेरणा देने वाले हैं । वह अहेतुक दयासिन्धु प्रभु हमारे जीवनों को निश्चय पवित्र करने वाले और हमें पाप-प्रवृत्तियों से रोकने वाले हैं किन्तु हम अपने अज्ञान के कारण तथा इन्द्रियों की दासता के वशीभूत होने के कारण उलटे मार्ग पर चलने लगते और निन्दित कर्मों को करने लगते हैं और इस प्रकार अपने जीवनों को नष्ट कर डालते हैं । अतः हम अपने भीतर आस्तिक बुद्धि जागृत कर और उस प्यारे प्रभु की शरण में पहुँच कर अपने जीवनों को पवित्र बनाने का संकल्प धारण करें और उससे दिव्य शक्ति की याचना करें जिससे हमारे जीवन निष्कलंक बन जाए और हम पतन के गर्त में गिरने से बच जायें । वह प्राणनाथ प्रभु निश्चय आत्मिक बल के देने हारे हैं । हमारी आत्माओं की सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने वाले हैं । प्रभु की सच्ची उपासना हमारे जीवन को सरसाने वाली और उसे दिव्य शक्तियों से संयुक्त करने वाली है ।

वह प्रभु तो निश्चय ही संसार यात्रा के समस्त आवश्यक पदार्थों को अपनी सन्तान के निमित्त जुटाने वाले हैं । उनकी अतुलित सम्पत्तियों का यह भण्डार तो उसकी सन्तान के निमित्त ही है । इस समस्त सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य का निर्माण उस दयालु पिता ने अपनी सन्तान के निमित्त ही तो किया है । अतः वह निश्चय ही अपने ऐश्वर्य भण्डार का द्वार हमारे लिए खोलने वाले हैं । हम भी शुद्ध और पवित्र बनकर उसमें प्रवेश करें और जो चाहें प्राप्त करें ।

पवित्रता के महान् केन्द्र परमात्मा देव अपने स्वभाव से ही बुराइयों को हमसे दूर भगाने वाले हैं किन्तु हम उसको विसार कर स्वयं बुराइयों के शिकार बन बैठते हैं। यदि एक बार दृढ़तापूर्वक बुराइयों से दूर हटने का हम संकल्प धारण कर लें तो निश्चय ही वह पतितपावन प्रभु उन बुराइयों से हमें मुक्त कर देंगे।

३

अग्न आयाहि वीतये।
गृणानो हव्यदातये ॥
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ साम० १-१-१

शब्दार्थ—(अग्ने) हे ज्योतिः स्वरूप दिव्य प्रकाश के केन्द्र (वीतये) पवित्रता, ज्योतिः गति व आनन्द की प्राप्ति के निमित्त (गृणानः) हम अपने उपासकों के (हव्यदातये) स्वत्व-त्याग की भावना के निमित्त (सत्सि) श्रेष्ठ सत्यता पूरित (बर्हिषि) यज्ञ में, यज्ञ वेदि में (निहोता) निश्चय पूर्वक पूर्णतया हवन करने वालों के (आयाहि) हृदय मन्दिर प्रकाशित में होवो।

भावार्थ—हे प्यारे प्रभो। हम अपने जीवन को सत्यता से परिपूरित करेंगे और अपनी पावन यज्ञ वेदी में बैठकर अर्थात् आपकी उपासना में रत होकर अहंकार का त्याग करेंगे। संसार की सकल सम्पत्ति, विभूति और ऐश्वर्य तो आपका है हम उस पर से अपना अधिकार और ममत्व हटावेंगे। आपकी धरोहर को अपनी सम्पत्ति समझने रूप पाप से बचेगें। यह सब कुछ हमारे लिए है किन्तु है तो आपका। हम को तो केवल उसका उचित उपभोग करने मात्र का अधिकार है। 'हम उसके स्वामी हैं और उसका मनमाना उपभोग करेगें' इस दुष्ट पाप भावना से हम निश्चय दूर रहेंगे।

हम सच्चे हृदय से आपके उपासक बनकर आपके शरणागत बनकर अज्ञान के कारण उत्पन्न हुए अपने ममत्व को दूर भगावेंगे। जो अनधिकार चेष्टाएँ हमने अपने जीवन में की हैं उनसे अपने को मुक्त करेंगे। आप अहेतुक दया-सिन्धु हैं। हम अपने उपासकों पर अपनी दया प्रसारित करो। और पर्दे से निकलकर प्रकट हो जाओ। हमारी मनोकामना पूर्ण करो। हमें अपने पावन दर्शन दो।

आपका दर्शन ही हमारे लिए सब कुछ हैं। हम उसकी प्राप्ति के लिए सच्चे हृदय से लालायित हैं। आप दर्शन देगें यह हमें विश्वास है। किन्तु न जाने क्यों अभी प्रकट होते नहीं। प्रभो हमारे धैर्य के बांध को टूटने न दो। अब अधीरता अधिक न बढ़ने दो।

आप पवित्रता, ज्योति, गति और आनन्द के दिव्य केन्द्र है। हमें भी पवित्र जीवन वाला बना दो। प्रकाश से हमारी आत्माओं को चमत्कृत कर दो।

हमारे जीवनों को प्रगतिशाल बनादो और दिव्य आनन्द रस का पान करने का हमें अधिकारी बना दो।

४

अग्निना रयिमश्नवत्।
पोषमेव दिवे दिवे।
यशसं वीरवत्तमम्।। ऋग० १-१-३

शब्दार्थ—(अग्निना) परमात्म देव द्वारा उत्पन्न (रयिं) ऐश्वय सम्पत्ति को (अश्नवत्) भोग करूँ जो (दिवे-दिवे) दिन प्रतिदिन (पोषं) पुष्टि करने वाला (एवं) ही (यशसं) यश के देने वाला (वीरवत्तमम्) एवं श्रेष्ठ बल के देने वाला है।

भावार्थ—परमात्मदेव ने जीवों के कल्याण के निमित नाना प्रकार के पदार्थों को रचा हुआ है। संसार के सर्व भोग उस प्यारे प्रभु की कृपा के द्वारा ही प्राणिमात्र के कल्याण के निमित पैदा किये गये हैं। संसार का यह सब ऐश्वर्य उस ही का है। मैंने इनको उत्पन्न किया है या मैं इनका स्वामी हूँ यह अहंमन्यता मानव के पतन का कारण है। यह जो कुछ है सब उसका है। इसमें मेरा पन कुछ भी नहीं। अतः मानव का इन भोग्य पदार्थों पर अपना अधिकार जमाना मूर्खता है। मानव को ममत्व त्याग कर आवश्यकतानुसार इन पदार्थों का सेवन करना चाहिये। आवश्यकता से अधिक भोग करना वा जोड़कर रखना या अन्यों को उसका भोग न करने देना अनुचित है और पाप है। ईश्वर का रचा कोई भी पदार्थ हानिकारक नहीं किन्तु मानव अपनी मूर्खता से अनुचित प्रयोग करके उसको हानि प्रद बना लेता है। अपने और दूसरों के विनाश का

कारण तक इन भोगों को बनाना निश्चय मानव की पामरता है। ज्ञान और त्याग पूर्वक किये हुए उपभोग निश्चय व्यक्ति और समष्टि को लाभ ही पहुंचाने वाले हैं।

परमात्मा के रचे पदार्थों का सही उपभोग मानव को शान्त बनाने वाला है। दान और त्याग पूर्वक किया गया उपभोग मानव को यश और कीर्ति के देने वाला है। यह उपभोग मानव की साँसारिक जीवन यात्रा के सुन्दर आधार हैं। अतः मानव को सदा उस प्यारे प्रभु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए इनका त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए।

५

अग्नि पूर्वेभि ऋषिभिः।
ईड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षतु। ऋग० १-१-२

शब्दार्थ—(अग्निः) परमात्मदेव (पूर्वेभिः) सिद्ध पुरुषों (ऋषिभिः) अन्तर्द्रष्टज्ञानी जनों द्वारा (उत) तथा (नूतनैः) साधना पथ के पथिक साधकों द्वारा (ईड्यः) उपासनीय है। (इह) इस जीवन में (सः) वह (देवाँ) दिव्य गुणों को (वक्षतु) सरंसावे।

भावार्थ—इस संसार में जितने भी महान् तपस्वी ज्ञानी सिद्ध पुरुष हुए हैं और होंगे तथा जितने सच्ची साधना के पथ के पान्थ हुए हैं और होंगे उन सबके एक मात्र परमात्मदेव ही उपास्य रहे हैं और रहेंगे। उनसे भिन्न कभी किसी ज्ञानी, सिद्ध वा साधनारत मानव ने कभी अन्य किसी वस्तु को अपना उपास्य देव माना है और न भविष्य में मानेंगे। परमात्मा से भिन्न किसी जड़ चेतन वस्तु की उपासना वास्तव में तर्क से सिद्ध ही नहीं होती और यदि हो भी जाय तो पूर्ण बल शक्ति ज्ञान व दिव्य सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं। उस महान् बल, शक्ति, ज्ञान एवं प्रकाश के केन्द्र से सम्पर्क स्थापित किये विना मानव का पूर्ण विकास असम्भव है अतः उससे सम्बन्ध स्थापित करने का ही सर्वथा सिद्ध साधकों का एक मात्र लक्ष रहता है।

उस दिव्य देव के गुणों का कीर्तन, स्तवन और संकल्पपूर्वक उनका अपने

अन्दर आह्वान करने से ही मानव की परम उन्नति सम्भव है। उस प्रभु की उपासना द्वारा ही मानव में दिव्य गुणों का विकास होता है। दिव्य शक्ति संचार होता है और दिव्य कर्मों का अनुष्ठान सम्भव और सरल हो जाता है।

हमने महान् ज्ञानी बनना है तो हमें निश्चय ही उस परम ज्ञानी की शरण में जाना होगा। हमें महान् क्रान्तिकारी बनना है तो निश्चय ही हमें उस परम बल व शक्ति के केन्द्र की उपासना करनी होगी। हमें अपने जीवन में दया, करुणा, अहिंसा, परोपकार, दान, त्याग आदि सरसाने हैं तो हमें निश्चय ही उस परम दयालु परम कारुणिक, परम अहिंसक, परमोपकारी, परम दानी, परमत्यागी परमात्म देव की ही उपासना करनी होगी। उनकी उपासना से निश्चय ही हमारे जीवनों में दिव्य गुणों का संचार हो सकेगा। अतः हम श्रद्धा समन्वित हो उसकी उपासना द्वारा अपने जीवन को सफल करने वाले बन जायें बस यही हमारी सबकी बलवती आकांक्षा होनी चाहिए।

६

अग्निमिन्धानो मनसा।
धियं सचेत मर्त्यः।
अग्निमिन्धे विवस्वभिः।। साम० २-६

शब्दार्थ—(मनसा) मन के द्वारा (अग्निं) दिव्य ज्योति को (इन्धानः) प्रकाशित करते हुए (मर्त्यः) मरण धर्मा मानव (धियं) बुद्धि का (सचेत) अनुकरण करे। (विवस्वभिः) नाना प्रकाशों की सहायता से (अग्निं) परम आत्मतत्व को (इन्धे) प्रकाशित करता है।

भावार्थ—परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है इनकी अन्दर की ओर गति नहीं है। यह तो बाह्य संसार के पदार्थों का ही केवल ज्ञान प्राप्त करा सकती हैं। प्रभु दर्शन कराने में ये इन्द्रियाँ सर्वथा असमर्थ हैं। इन इन्द्रियों का नियामक मन जब अपनी चंचलता त्यागकर एकाग्र होता है और भृकुटी, नासाग्र भाग आदि किसी निश्चित स्थान में आसन जमाकर बैठ जाता है तब वह उस दिव्य परम ज्योतिः को उद्बुद्ध करने में आत्मा का साधक बन जाता है।

यह जन्म-मरण के चक्र में फंसा हुआ और आत्मस्वरूप को न जानने वाला मानव इस पाञ्चभौतिक शरीर को ही अहं मानकर व्यवहार करता और इस शरीर के नष्ट हो जाने पर अपने को नष्ट हुआ मानता है। किन्तु यथार्थ में यह आत्मा अविनाशी चेतन एवं महती शक्ति का पुञ्ज है। आत्मा को अपने इस यथार्थ स्वरूप का बोध बुद्धि द्वारा ही हो पाता है। किन्तु बुद्धि भी तब ही सफल होती है जब उसको मलीन संस्कारों से पृथक् रखा जाय और पक्षपात से बचाकर सत्य की खोज में लगाया जाय। मतान्धता और अन्धविश्वासों के झंझावात में फंस कर यह बुद्धि सर्वथा निकम्मी बन जाती है।

जिस समय मनुष्य पक्षपातशून्य होकर और मतान्धता से ऊपर उठकर इस बुद्धि को परिष्कृत करता है तब यह चमकने लगती है अर्थात् ज्योतिष्मती बन जाती है और इसके द्वारा आत्मदेव सत्य के दिव्य स्रोत के सन्निकट पहुँच जाता है। दिव्य प्रकाश की प्राप्ति से पूर्व इस बुद्धि की सहायता से साधक को अनेक अन्य प्रकाशों का भान होता है किन्तु इन प्रकाशों को प्राप्तव्य दिव्यतम प्रकाश न मानकर आगे ही आगे साधना करते चले जाने से एक समय वह आयेगा और निश्चय आयेगा जब मानव को उस दिव्य परम ज्योतिः के दर्शन अपने अन्दर होंगे। उस दिव्य प्रकाश की अभिव्यक्ति में यह बुद्धि और मन केवल सहायक मात्र होते हैं। किन्तु उस पावन प्रकाश का दर्शन तो यह आत्मा ही कर पाता है। किन्तु उस दिव्या प्रकाश के प्रकट होने पर यह आत्मा स्वयं खो-सा जाता है। इसको अपनेपन का ज्ञान ही नहीं रहता यह तो उस दिव्य आनन्दसागर में निमज्जित हो जाता है।

७

अग्निमीले पुरोहितं।
यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ ऋ० १-१-१

शब्दार्थ—(पुरोहितं) सदा हितकारी (यज्ञस्य) यज्ञों के (देवं) प्रकाशित करने वाले (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में यजन करने वाले

(रं) यज्ञों में सतत आहुति डालने वाले (रत्नधातमम्) रत्नों की महान् खान (अग्निं) दिव्य प्रकाश पुञ्ज परमात्मदेव की (ईले) मैं वन्दना करता हूँ ।

भावार्थ—परमात्म देव के असंख्य नामों में से एक पावन नाम अग्नि है । यह दिव्य अग्नि निश्चय ही पापों को, मन के मैलों को भस्म करने वाला है । सर्वव्यापक होने के कारण स्वयं गतिशून्य होकर भी विश्व को गति देना अग्निदेव का महान् कार्य है । अग्नि देव सर्वज्ञ होने से अतुलित ज्ञान के भण्डार हैं और सर्व व्यापक होने से कण-कण में रमे हुए हैं । वह विश्व के नियन्ता और नियामक हैं और इस सृजना के पूर्व भी अपने सर्व गुणों से एवं रससंयुक्त रहते हैं ।

सदा सबका कल्याण करना उस अग्नि देव का स्वभाव है जिस हेतु उसको पुरोहित कहा जाता है । वह यज्ञों में अर्थात् श्रेष्ठ परोपकारादि शुभ कर्मों में प्रकाशित होने वाले हैं । दीन-दुखियों की सेवा, अनाथों की रक्षा, पतितों का उद्धार और निर्बलों की सहायता करने में उस प्यारे प्रभु की अनुभूति होने लगती है । वह तो सब शुभ कर्मों के अनुष्ठान में मानव को अन्दर बैठे हुए बल एवं शक्ति प्रदान करने वाले हैं ।

अग्निदेव ऋत्विज हैं । नाना ऋतुओं का निर्माण कर इस सृष्टि में भारी यजन कर रहे हैं अर्थात् प्राणिमात्र के हित नाना उपयुक्त वस्तुओं का निर्माण कर रहे हैं । गर्मी हो या शीत, वसन्त हो या वर्षा, शरद हो या हेमन्त सब ही ऋतुओं में मानव को भक्तिभाव से उनका यजन अर्थात् वन्दन पूजन करना चाहिए ।

अग्निदेव तो स्वयं होता भी हैं । इस सृष्टि में नाना दिव्य पदार्थों का निर्माण कर और प्राणि मात्र के हित निरन्तर उनका दान कर अग्निदेव सतत अपना यज्ञ चलाते हैं । पर्दे में बैठ कर मानव के हृदयों में उनके शुभ कर्मों के अनुष्ठान में बल का सञ्चार करना और उन शुभ कर्मों की ओर सदा मानव को प्रेरित करना उस दयालु देव का महान् कार्य है । अग्नि देव तो रत्नों के भण्डार हैं । वायु, जल, प्रकाश, अन्न, दुग्ध, फल, मोती, माणिक्य आदि संख्य दिव्य पदार्थों की सृजना, संरक्षण और दान द्वारा वह प्राणिमात्र के हित करने वाले हैं । अतः हम सब भक्ति-भाव से उस प्राणनाथ को नमन करते हैं । बस वही एकमात्र हमारे उपास्यदेव हैं ।

८

अग्निः शुचिव्रततमः ।
शुचिर्विप्रः शुचिः कविः ।
शुची रोचत आहुतः ।। ऋ० ८ । ४४ । २१

शब्दार्थ—(अग्निः) विश्वनियन्ता परमात्मा (शुचिव्रततमः) परम पवित्रता कारक (शुचिःविप्रः) पवित्र ज्ञान का दाता (आहुतः) मन मन्दिर में पुकारा हुआ (शुची रोचते) पूर्ण पवित्रता के साथ प्रकाशित होता है।

भावार्थ—सारे संसार का नियन्त्रण करने वाला परमात्मा परम पवित्रता का केन्द्र है। उसमें किसी भी प्रकार की अपवित्रता अथवा पापों का सम्पर्क नहीं है। वह तो सदा अपापविद्ध रहने वाला है। पवित्र ज्ञान के द्वारा परमात्मा संसार में पवित्रता का परम प्रसारक है। मानवों को पापों से युद्ध करने की सतत प्रेरणा देने वाला है। परमात्मा विप्र है अर्थात् ज्ञान का दाता है। उसका ज्ञान पूर्ण और पवित्र है। जो भी मानव उसके ज्ञान से आलोकित होगा निश्चय वह पवित्र बन जायेगा। उससे अपवित्रता अशुचिता, मलीनता और प्रमाद दूर भागने लगेंगे। उसके आत्मा पर पड़ा अज्ञान का पर्दा हटने लगेगा और वह निश्चय तत्त्वद्रष्टा बनकर संसार में चमकने लगेगा।

परमात्मदेव अमर काव्य वेद के प्रकाशक हैं। उनके वेद अर्थात् ज्ञान का कोष अक्षय और अनन्त है। परमात्मा का ज्ञान पूर्णतया पवित्र है और पवित्रता का मानवों में सञ्चार करने वाला है। वह प्रभु क्रान्तदर्शी है। हृदय की गुह्यतम बातों को जानने वाला है।

जो जन श्रद्धापूर्वक अर्थात् सत्य ज्ञान के आलोक से आलोकित होकर उसको पुकारते हैं अर्थात् मन मन्दिर में उसके पवित्रतम गुण, कर्म, तथा स्वभावों का कीर्तन करते और उनको अपने अन्दर धारण करने का संकल्प एवं प्रयत्न करते हैं उनको उस प्रभु की पावन ज्योतिः का दर्शन होता है। कणकण में उस प्यारे प्रभु की ज्योतिः समाई हुई है। सूर्य की किरणों और चन्द्र की शीतल ज्योत्स्ना में उस प्राणनाथ प्रभु की ज्योतिः चमक रही

है। सागर की लहरों, नदियों के कलकल निनाद और विजली की कड़क में उसकी ध्वनि गुंजारित है।

परमात्मा की ज्योति: अन्धकार विनाशक और परम पवित्रता की कारक है। पाप और अज्ञान का अन्धकार उसके सामने टिकने वाला नहीं है।

प्रभो! हम श्रद्धा पूर्वक आपका आवाहन करते हैं। हमें अपनी उस दिव्य ज्योति: की झलक दिखला दो। हमें अज्ञानान्धकार के गर्त से निकाल कर अपने दिव्य ज्ञान के पावन आलोक में जीवन नौका खेने वाला बना दो। अपनी कृपा से हम उपासकों को अलंकृत कर दो। अब तक हम बहुत भटके और ठोकरें खाते रहे। प्रभो! अब तो अपनी दया का वरद हस्त हम अपने उपासकों के ऊपर प्रसारित कर दो।

६

अग्निर्होता कविक्रतुः।
सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत् ॥ ऋ० १।१।५

शब्दार्थ—(अग्निः) सर्वदृक् (होता) अन्तर्बोध कराने वाला (कविः) क्रान्तदर्शी परमज्ञानी (क्रतुः) संसार को उत्पन्न करने वाला (सत्यः) अविनाशी सदा एक रस विद्यमान रहने वाला (चित्रश्रवस्तमः) अद्भुत श्रवणादि गुणों से युक्त (देवः) दिव्य गुणों का भण्डार (देवेभिः) दिव्य शक्तियों से युक्त (आगमत्) सदा प्रकाशित होता है।

भावार्थ—हे सर्वदृक् अर्थात् सब कुछ जानने वाले प्रभो। आपसे इस संसार में कुछ भी तो छिपा हुआ नहीं है। घट-घट वासी होने से प्रत्येक प्राणी के हृदय में उठने वाले संकल्प-विकल्प आपसे ओझल नहीं हैं। आपसे छिपाकर हम अपने मनों में कोई विचार भी नहीं रख सकते। निष्काम भावना से किये गये प्रत्येक शुभ कार्य में आप प्रकाशित होने वाले और कार्यकर्त्ता को शक्ति के देने वाले हैं। आप तो परमज्ञानी, ज्ञान के अनन्त भण्डार हो। आपके ज्ञान का कोष अक्षय और अपार है!

यह सारा संसार आपने ही अपने परम सामर्थ्य से रचा है। प्रभो! आप सर्वशक्तिमान् हो। आपको इस महान् रचना कार्य के सम्पन्न करने में किसी भी प्रकार के सहायक वा साधन की आवश्यकता नहीं है। अनादि प्रकृति को इस महती संसृति में परिवर्तित करने वाले आप ही हो। आप सदा अखण्ड एकरस विद्यमान हो। आप जन्म मरण के बन्धन से सदा मुक्त रहने वाले अच्युत अविनाशी हो। आप स्वयम् अर्थात् अपनी सत्ता से सदा वर्तमान रहने वाले हो।

आपके श्रवण, ईक्षण, मनन आदि गुण अद्भुत, पूर्ण और महान् हैं। बिना भौतिक साधनों के आप सब कुछ सुनने देखने और मनन करने वाले हो। आपकी कीर्ति व महिमा भी अद्भुत और महान् है, महत्तम है जिसका कोई अन्त ही नहीं हैं। आप सर्व दिव्य गुणों के आगार हो। वह गुण-गुण ही नहीं जो आप में पूर्णता को प्राप्त न हो। आप इन दैवी गुणों के ऐसे केन्द्र हो कि जिसको पाकर मानव कृतकृत्य हो जाता है और उसकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। आपके उपासक के अन्दर इन दिव्य गुणों की मात्रा प्रतिबिम्बित होने लगती है। जिस प्रकार अग्नि के सान्निध्य से लोहा दीप्तिमान बन जाता है वैसे ही आपका उपासक भी तेजोमय बनकर संसार में चमकने लगता है।

प्रभो! अपने इन महान् दिव्य गुणों को मुझ उपासक के अन्दर प्रस्फुटित कर दो। मुझ शरणागत को तेजोमय बना दो जिससे मैं आपकी आज्ञाओं का वाहन बन कर सतत उनका जगत् में विस्तार कर अपने जीवन को सफल बना सकूँ।

१०

अग्ने यं यज्ञमध्वरम् ।
विश्वतः परिभूरसि ॥
स इद्देवेषु गच्छति ॥ ऋ० १-१-४ ॥

शब्दार्थ—(अग्ने) ज्योतिः स्वरूप परमात्मन् जिस (अध्वरं) हिंसा रहित (यं) यज्ञ के (विश्वतः) सर्व प्रकार से (परिभूः)

रक्षक (श्रीस) हो (सः) वह यज्ञ (इत) निश्चय पूर्वक (देवेषु) दिव्य-गुणों को (गच्छति) प्राप्त करता है।

भावार्थ—अग्नि में किये जाने वाले यजनों तथा देश, जाति समाज एवं प्राणिमात्र के हित की कामना से किये जाने वाले उपकार कर्मों का नाम यज्ञ है। अग्निहोत्र में तो केवल सात्त्विक श्रोषधियाँ, अन्न, घृत, फलादि ही आहुत किये जाते हैं। और इन पदार्थों के सर्वथा हिंसा रहित होने से ही यज्ञ को अध्वर नाम से पुकारा जाता है। किन्तु अन्यायी, अत्याचारी आक्रान्ता आदि के विरुद्ध राष्ट्रहित वा जनहित की दृष्टि से शस्त्रों का प्रयोग भी किया जाता है और इसमें हिंसा भी होती है किन्तु इस वेद विहित हिंसा की गणना हिंसा की कोटि में नहीं की जाती। राष्ट्र कल्याणार्थ रचा गया यह अश्वमेध भी निश्चय अध्वर है।

स्वार्थ साधना से सर्वथा शून्य और जनकल्याण की दृष्टि से किये गये समस्त यज्ञों में उस पावन प्रभु की रक्षा का हाथ सदा साथ रहता है। वह प्रभु तो निश्चय ही इन यज्ञों की रक्षा करने हारे हैं। परोपकार की उज्ज्वल भावना से किये गये इन यज्ञों के द्वारा याज्ञिकों को आत्यान्तिक सुख, सन्तोष और शान्ति का अनुभव होता है। परहित अथवा राष्ट्रहित सहे गये कष्ट आत्मा में स्वाभिमान की भावनाएँ जाग्रत करते हैं इनसे मानव मर्त्य से देव बनने लगता है। किन्तु यदि वह अपनी सेवाओं के बदले पुरस्कार, पारितोषिक, ख्याति आदि प्राप्त करने की भावना को किञ्चित मात्र भी पास फटकने देता है तो उसका तेज नष्ट हो जाता और उसका पतन होने लगता है।

जो मानव कर्त्तव्य कर्म समझकर ही इन यज्ञों को अपपे जीवन में करता रहता और अपनी सेवाओं को प्रभु को समर्पित करता चला जाता है निश्चय वह एक दिन देवत्व को प्राप्त करेगा और दिव्य सुख एवं शान्ति को उपलब्ध करेगा।

प्रभो हमें बुद्धि दो कि हम निष्काम भावना से अपने जीवन में उपकार एवं सेवा रूपी यज्ञ को करने वाले बन जाएँ और अपने जीवन को सफल बनाएँ।

११

अग्ने रक्षाणो अंहसः।
प्रतिष्म देव रीषतः ।।
तपिष्ठैरजरो दह ।। ऋ० ७-१५-१३ ।।

शब्दार्थ—(अग्ने) हे सर्वव्यापक प्रभो ! (नः) हम सबकी (अंहस) पापों से (रक्षा) रक्षा करो (देव) हे देव (रीषतः) हानि पहुँचाने वालों के (प्रतिष्म) हम विरोध में खड़े होवें (अजरः) आप कभी जीर्ण न होने वाले प्रभो (तपिष्ठै) घोर सन्तापों द्वारा उनको (दह) पीडित करो।

भावार्थ—हे घट-घट वासी प्राणनाथ प्रभो ! हमें ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करो कि हम अपने जीवन में कभी पाप न करें। सदा पापाचरण से बचे रहें। पाप करने वालों के सम्पर्क व सहवास से हम अपने को सदा पृथक् रखें। जब कभी यह पाप बर्बस हमको घेरने लगें तो आप उस समय अपनी रक्षा का हाथ बढ़ाओ और इनसे हमारी रक्षा करो। हमारे अन्दर पापों के प्रति तीव्र घृणा का भाव जागृत करो और शक्ति दो कि हम उनसे डटकर लोहा ले सकें। जीवन को नष्ट करने वाले पापों और पापियों से संघर्ष करने में हमारी विजय हो। आपकी अद्भुत रक्षण शक्ति हमारे अन्दर स्फूर्ति, तेज और पराक्रम को जागृत करने वाली होवें।

यदि महान् शक्तिशाली पापी सम्राट् भी अपनी विशाल सेनाओं द्वारा हम पर आक्रमण करे और हमको मिटाना चाहे तो हम निर्भय और निःशंक होकर प्राणपण से उससे टक्कर लेवें, उसकी संहार कारिणी सेना के सामने जूझने वाले बनें और अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक उस पापी का सामना करते रहें। रण में पीठ दिखाकर भागने वाले हम कभी न बनें।

प्रभो ! आपकी शक्ति तो अजेय है, कभी उसका ह्रास नहीं होता वह तो सदा पूर्ण ही रहने वाली है उसके क्षय होने की तो कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

आपकी पापसंहारिणी शक्ति अद्भुत और महान् है, उसके सामने संसार

की बड़ी-से-बड़ी आसुरी शक्ति ठहर नहीं सकती।

प्रभो ! अपनी उस अद्भुत शक्ति का संचार धर्मनिष्ठ पवित्र आत्माओं में करदो जिससे वह पापियों और पापों का दहन करने में समर्थ हो सकें।

१२

अग्ने शुक्रेण शोचिषा।
विश्वाभि देव हूतिभि: ॥
इमं स्तोमं जुषस्व न: ॥ ऋ० १-१२-१२

शब्दार्थ—(अग्ने) हे घट-घट वासी ज्योति:स्वरूप परमात्मान् ! (शुक्रेण) शुद्ध पवित्र प्रकाशयुक्त (शोचिषा) तेज के द्वारा (विश्वाभि:) समस्त (देवहूतिभि:) दिव्य आन्तरिक प्रेरणाओं द्वारा (न:) हमारे (इमं) इस (स्तोमं) यज्ञ को (जुषस्व) चमकृत कर दो।

भावार्थ—परमात्मदेव घट-घट के वासी अविनाशी दिव्य प्रकाश के महान् पुत्र हैं उनकी आत्म-ज्योति: वा तेज अकथनीय है जो पापियों को दग्ध करने वाला, पापों को दूर भगाने वाला, मलिनता नाशक और अन्त:करण को पवित्र करने वाला है। उस ज्योति की थोड़ी-सी भी झलक मानव को भयङ्कर पाप गति से बचाने वाली, जीवन-पथ के अन्धकार को दूर भगाने वाली, पापों की घनघोर निशा में बिजली की भाँति कौंद कर मार्ग दर्शन कराने वाली है। भूले राही को रास्ता दिखलाने वाली है।

उस प्रभु की रक्षा के साधन महान और दिव्य हैं। भयङ्कर कान्तारों, तूफानों और संग्रामों में भी वह रक्षा करने वाला है। रक्षा करने वाले उसके असंख्य हस्त सर्वत्र फैले हुए हैं। ऊँचे पर्वतों के हिमपात में सागर की लहरों और अग्नि की भयङ्कर ज्वालाओं में भी वह अपने चक्र से कर्त्तव्यनिष्ठ मानव की रक्षा करता है। अन्तस्तल से निकली हुई उसकी वास्तविक प्रार्थनाओं को वह निश्चय सुनने वाला है।

हम निरन्तर त्याग और बलिदान के पथ पर चलते हुए अपने को यज्ञमय बनाने वाले बन जाएँ। हम अपने जीवन को उस प्राणनाथ प्रभु की आशाओं

का वाहन बना डालें। बस उस प्रभु की आज्ञाओं और आदेशों का पालन करना ही हमारे जीवन की साधना और व्रत हो। हमारी साधना स्वार्थ शून्य और हमारा त्याग दया से पूर हो। हमारे दान में ख्याति की कामना का लेश न हो। हमारे बलिदान में केवल मात्र कर्त्तव्य पालन की भावना ही विद्यमान हो। हम जो यज्ञ करते हैं, अथवा परोपकार के जो कुछ भी कार्य करते हैं उसमें आत्मत्याग की पूरी पुट हो। हमने अपने जीवन में जो कुछ भी देश जाति के कल्याण एवं मानव के उत्थान हित तप और त्याग किया है वह तो केवल मात्र अपने कर्त्तव्य का पालन किया है उसके बदले में किसी पुरस्कार की कामना करना अपने तप त्याग के तेज को नष्ट करना है। प्रभो! हमारी आप से यह ही विनती है कि हमारे तप और त्याग को अधिक-से-अधिक तेजोमय बना दो। तप, त्याग, नेकी और परोपकार करने के उपरान्त उसकी तो स्मृति मात्र भी हमारे से दूर हो जावें और इस प्रकार हमारे जीवन का यह यज्ञ चमत्क्रम हो उठे।

१३

अग्ने सुखतमे रथे।
देवां ईडित आ वह।
असि होता मनुर्हितः ॥ ऋ० १-१३-४

शब्दार्थ—(अग्ने) परम प्रकाशपूर्णप्रभो! (देवां ईडित) देवों द्वारा स्तुति किये हुए (सुखतमे) अत्यन्त सुखों से भरपूर (रथे) जीवन रथपर (आ वह) हमको चढ़ाये (होता) आप इस सृष्टि-यज्ञ के महान होता (मनुः) सब कुछ जानने वाले (हितः) परम हितकारक (असि) हो।

भावार्थ—परमात्म देवने मानव जीवन यात्रा के निमित्त इस सुन्दर शरीर रूपी रथ की रचना की है। यह रचना इतनी विचित्र, आश्चर्यजनक एवं पूर्ण है कि मानव इसके एक-एक कल पुर्जे को लखकर आश्चर्य चकित हो जाता है। यदि इस प्रकार रथ का माता पिता द्वारा सही प्रकार से रक्षण किया जाय

और बाल्यकाल से ही ब्रह्मचर्य के पूर्ण संरक्षण द्वारा इसको पुष्ट किया जाय तो इसमें आश्चर्यजनक शक्ति एवं बल का विकास होता है और मानव अपनी संसार यात्रा अत्यन्त सुख के साथ पूरी कर सकता है। संसार के तपस्वी, योगी मानव इस रथ को सदा सम्यक् प्रकार से रक्षण करते, रथ के इन्द्रिय रूपी घोड़ों को सदा साधकर रखते, इसके प्रग्रह (लगभग) और सरथी अर्थात् मन और बुद्धि पर भी सदा नियन्त्रण रखते उनको कभी गाफिल नहीं होने देते क्यों कि वे जानते हैं कि यह रथ पूर्व जन्मों के पुण्य के प्रताप से प्राप्त होता है और इस ही रथ के द्वारा संसार की यात्रा पूरी करके जीवन के ध्येय को प्राप्त किया जा सकता है। यह मानव शरीर ही है जो आत्मा को दिव्य धाम तक पहुँचा सकता है अर्थात् मुक्ति तक की प्राप्त कर सकता है।

प्रभो ! आप इस संसार रूपी महान् यज्ञ के रचयिता हो और आपने हमारे कल्याण के हेतु ही यह महान् यज्ञ रचा है।

प्रभो ! आप परमज्ञानी हो। आपका ज्ञान सदा एक रस विद्यमान रहता है। आपके ज्ञान में भ्रम का लेश भी नहीं है इसलिए आपकी यह रचना भी निर्दोष एवं पूर्ण है।

आप तो महान् मनस्वी हो। अतः आपने इस रथ और संसार की रचना भी अत्यन्त बुद्धिमत्ता के साथ की है। प्रभो ! आप परम करुणानीर, दयालु हो अपनी सन्तात पर आपकी कृपा व दया सदा बनी रहती है। आपने अपनी सन्तान अर्थात् प्राणीमात्र के कल्याण हेतु ही इस संसार की और संसार के प्रत्येक पदार्थ की रचना की है। नाथ ! आपसे बढ़कर कौन हमारा हितैषी है आप जैसे परम हितु को पाकर अब और किस की हम याचना करें।

१४

अतो विश्वान्यद्भुता।
चिकित्वां अभिपश्यति।
कृतानि या च कर्त्वा ॥ ऋ० १।२५।११

शब्दार्थ—(अतः) उस परमात्मा के (विश्वानि) समस्त (अद्-

भूता) विचित्र आश्चर्यजनक (कृतानि) सृष्टि रचनादि कार्य हैं (या) जिनको (आङ् चिकित्वा) सम्यक् ज्ञान पूर्वक जानकर (कर्त्वा) और रचकर (अभिपश्यति) उन पर सम्यक् दृष्टि रखता है।

भावार्थ—सृष्टि रचना का प्रत्येक कार्य अत्यन्त अद्भुत विचित्र और महान् है। पृथिवी, आप: तेज, वायु, आकाश तत्वों की रचना, सूर्य, ध्रुव आदि नक्षत्रों, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि ग्रहों और चन्द्रमादि उपग्रहो की सृजना आश्चर्यजनक और महान् है। परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की सामर्थ्य नहीं कि उनकी रचना कर सके।

प्राणी के कल्याण के लिये इन पञ्चतत्वों के योग से विभिन्न प्रकार के अन्न, वनस्पति, शाक, फल औषधियों को उत्पन्न करने वाला भी वही परमात्मा है।

प्रत्येक प्राणी के शरीर की रचना और शरीर के अन्दर नाना नस नाड़ी, अस्थि, मज्जा आदि धातुओं की सर्व सृजना भी परमात्मा द्वारा ही होती है। इस सारी-की-सारी सृष्टि रचना को परमात्मा से भिन्न अन्य कोई कर ही नहीं सकता।

परमात्मा पूर्ण ज्ञानी है अत: उसकी रचना भी पूर्ण है। उसमें कहीं कोई त्रुटि नहीं। परमात्मा को अपनी सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ का सम्यक् ज्ञान रहता है। कोई भी पदार्थ उसके ज्ञान से एक क्षण के लिये भी ओझल नहीं रहता। परमात्मा अपनी सृजना का संरक्षण सहज स्वभाव से करते हैं। प्रत्येक कार्य पर पूर्ण दृष्टि उनकी सदा रहती है। ऐसे उस परम ज्ञानी, परम दयावान् परमोपकारी स्रष्टा को विसारना महान् कृतघ्नता और पाप है। वह प्रभु हम को कभी भी नहीं विसारता, अत: हम क्यों उसको विसार कर कृतघ्न और पापी बनें।

१५

अपां मध्ये तस्थिवान्सं।
तृष्णाविदत् जरितारम्।
मृडा सुक्षत्र मृडय॥ ऋ० ७।९।४

शब्दार्थ—(अपां) कर्मों के (मध्ये) बीच में (तस्थिवान्सँ) बैठे

हुए, बन्धे हुए (जरितारं) स्तुति कर्त्ता को (तृष्णा) सांसारिक लालसा (विदत्) घेरे रहती है (सुक्षत्र) हे सम्यक् प्रकार से पालन करने वाले (मृड) अपनी कृपा द्वारा (मृडय) कृतार्थ करो।

भावार्थ—कर्मबन्धन में जकड़ा हुआ यह सारा संसार चल रहा है। जीवात्मा अपने पूर्वजन्म के कर्मों के कारण ही नाना अच्छी बुरी योनियों को प्राप्त होता है। नरतन को पाकर भी जीव को कर्म-बन्धन सुगमता से छोड़ने वाला नहीं। निज अज्ञान एवं पूर्व-संस्कारों के कारण उत्पन्न हुई भोगों की लालसा मानव को मर्कट की भान्ति निरन्तर नचाती रहती है। भोगों को भोगकर वह आत्मिक शान्ति की कामना करता है किन्तु भोगों के द्वारा इस शान्ति का मिलना सम्भव नहीं। शान्ति-पथ के पथिक के लिये विरक्ति और त्याग का होना अनिवार्य है'

त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए वैराग्य वृत्ति को दृढ़ करते जाने से और ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना का निरन्तर अभ्यास करने से चित्त को डाँवा डोल न होने देकर ईश-ध्यान में निरन्तर नियमपूर्वक लगाते रहने से मानव एक दिन इस तृष्णा के सागर के पार पहुँच सकता है। इस आसक्ति से उसका छुटकारा हो सकता है किन्तु केवल अभ्यास मात्र पर्याप्त नहीं होता। जिस समय तक उस अतुलित दया के भण्डार प्राणनाथ प्रभु की दया वा कृपा का साया उस पर नहीं पड़ता इस लालसा के बन्धन से छुटकारा पाने में समर्थ नहीं होता। नाथ! आप ही हमारे एकमात्र सहायक और सम्बल हो। आपसे बढ़कर अन्य कोई हमारा सहारा नहीं। अपनी कृपा हम पर प्रसारित करो।

दया-सिन्धो! अपनी दया का द्वार हम अपने उपासकों के लिये खोल दो। हमें आसक्ति से दूर हटाओ और कर्म-बन्धनों से हमें छुटकारा दिलाओ। हमें अपने दिव्य धाम में प्रवेश पाने का अधिकारी बना दो।

१६

अस्माँ अवन्तु ते शतम् ।
अस्मान्त्सहस्रमूतयः ।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ।। ऋ० ४-३१-१०

शब्दार्थ—(अस्माँ) हम सब का (ते) आपके (शतं) सैकड़ों (अस्माँ) हम सबका (सहस्र) हजारों (ऊतयः) रक्षा के साधन (अवन्तु) त्राण करने वाले हों (अस्माँ) हम सब को (विश्वा) समस्त प्रकार के (अभिष्टयः) कल्याण प्राप्त होवें।

भावार्थ– हे परमेश्वर्यवान् जगन्नियन्ता जगदीश्वर ! आपके पास प्राणी-मात्र की रक्षा करने के साधनों का भण्डार अक्षय अद्वितीय और महान् है। आप प्रत्येक प्राणी की हर अवस्था में तथा हर स्थान में रक्षा करने वाले हो। आपकी रक्षा के हाथ भयंकर असाध्य रोगों व आपत्तियों से त्राण करने में तथा युद्ध क्षेत्रों में भी रक्षा करने के निमित्त विस्तृत रहते हैं। निश्चय ही आप सहस्रों प्रकार से रक्षा करने वाले हो। हम इन भौतिक नेत्रों से आपके दर्शन तो नहीं कर पाते किन्तु मानस नेत्रों द्वारा आपके महान् त्राणकर्त्ता हस्तों का सर्वत्र अनुभव करते हैं।

पर्वतों के शिखरों और कन्दराओं में, निर्जन बीहड़ वनों और कान्तारों में, सागर की उत्ताल तरंगों, भयंकर भूकम्पों और झञ्झावातों में भी आप अपने भक्तों और अनुचरों की रक्षा करने वाले हो। न्याय नियमों के आधार पर जिन को आप बचाना चाहते हो, संसार की कोई शक्ति उनका संहार नहीं कर सकती और जो आपकी न्याय-व्यवस्था में सन्ताप और मृत्यु का ग्रास बनने वाले हैं उनको कोई बचा नहीं सकता। प्यारे प्रभो ! आप तो जीवों का नाना विधि कल्याण करने वाले हो। आपने अपनी चिरन्तन प्रजाओं के लिये सर्व प्रकार की आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सम्पदाओं का भण्डार खोला हुआ है। किन्तु मानव अपनी ही भूलों के कारण आँखें होते हुए भी इन विभूतियों को नहीं देखता और इनसे आवश्यक लाभ भी नहीं उठाने पाता

है। कृपा करो कि हम आपकी इन विभूतियों की अनुभूति लेने वाले बन जायें और आसक्ति त्याग कर इनसे अपने जीवन को कृतकृत्य करने में संलग्न हो जायें। हम आपकी दिव्य अनुकम्पा के साये में रहते हुए अपने सर्वतोमुखी उत्थान एवं कल्याण के सम्पादन करने में पूर्ण प्रयत्न से जुट जायें। बस यही हमारी कामना और जीवन की सच्ची साधना बन जाय।

१७

अहमिद्धि पितुःपरि।
मेधामृतस्य जग्रभा।
अहं सूर्य इवाजनि॥

ऋ० ८। ६। १० सा०। २। २। ३। ८ अथर्व २०-११५

शब्दार्थ—(अहं) मैं उपासक (इद् हि) विशेष निश्चयपूर्वक (पितुः) पालन कर्त्ता परमात्मा की (परि) सम्यक् प्रकार से उपासना में संलग्न हूँ (ऋतस्य) सत्य की (मेधां) धारणावती बुद्धि को (जग्रभा) मैंने धारण किया हुआ है (अहं) मैं (सूर्य इव) प्रकाशमान सूर्य की भाँति (आजनि) हो गया हूँ।

भावार्थ—प्रभु की उपासना में जिसने पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर ली है तथा जिसने अपने और परमात्मा के बीच के भेदकारक पर्दे को सर्वथा उठा दिया है, जो सम्यक् प्रकार से उस पतित पावन, विश्व का संरक्षण करने हारे परमपिता के दर्शन करने का अभ्यासी बन गया है और कण-कण में ज्ञान दृष्टि से उसकी छटा निरखने लगा है तथा जो मानव ऐसी अनुभूति लेने लगा है कि वह "ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है और उससे कोई भी स्थान शून्य नहीं है", ऐसे अभ्यासी मानव की ज्योतिष्मती बुद्धि सत्य और केवल सत्य को ही धारण करने लगती है। ऐसा मानव अनृत से सर्वथा पृथक् रहकर मनसा-वाचा कर्मणा एकमात्र सत्य का ही प्रकाश करने लगता है। ऐसा मानव पक्षपात से ऊपर उठकर नग्न सत्य का ही सर्वथा प्रकाश करना अपने जीवन का ध्येय बना लेता है। सत्य के प्रकाश करने में ही वह मानवमात्र का हित

और कल्याण देखने लगता है ! मतवाद से ऊपर उठकर एकमात्र धर्म का दिव्य दर्शन, बखान एवं आचरण करना उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है। कैसी भी विपरीत परिस्थिति क्यों न आए वह सत्य को कभी त्यागता नहीं। सत्य का प्रकाश करने में उसको अपने प्राणों की भी चिन्ता नहीं रहती। यह नाशवान् शरीर आज रहे या न रहे इसकी उसे चिन्ता नहीं। उसको चिन्ता है तो केवल चिरन्तन व शाश्वत सत्य को सदा दृढ़तापूर्वक धारण किये रहने की। "सत्य ही जीवन और अनृत मृत्यु है" यह उसके जीवन का अन्तरा बन जाता है, वह अपने क्रियात्मक जीवन द्वारा इस अन्तरे की सतत घोषणा करता रहता है। ऐसा सिद्ध पुरुष सूर्य के समान ससार में प्रकाशित होता है संसार के अज्ञान अन्धकार को, पक्षपातपूर्ण मत-मतान्तरों को विदीर्ण कर दिव्य सत्य का प्रकाश करना और संसार की आत्माओं के कल्मष को धोकर उनको सत्यता का पथिक बनाना उसके जीवन का पवित्र लक्ष्य बन जाता है।

हे जगत्पावन प्रभो ! हम अपने उपासकों पर कृपा करो। हमारे हृदयों में सत्य के प्रति अगाध प्रीति जागृत कर दो। हमारे हृदयों को श्रद्धा से पूर्ण कर दो। हम अनृत से ऊपर उठकर मनसा वाचा कर्मणा सत्य मार्ग पर चलने वाले बन जायें और सतत साधना द्वारा आपके दिव्य दर्शन कर और आपके दिव्य तेज से युक्त होकर संसार में आपके आदेशों के वाहन बन जायें।

१८

आ त एतु मनः पुनः।
क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ऋ० १०-५७-४

शब्दार्थ—(आ त) चारों ओर फैला हुआ (मनः) मनस्तत्व (पुनः) बारंबार (क्रत्वे) त्यागपूर्ण (दक्षाय) दाक्षिण्य संयुक्त (जीवसे) जीवन के निमित्त (एतु) प्राप्त होवे (च) तथा (ज्योक्) सम्यक् प्रकार से (सूर्यं) दिव्य प्रकाश के केन्द्र परमात्मा के (दृशे) दर्शन करें।

भावार्थ—यह मनस्तत्व चारों'ओर फैला हुआ है। मैं भौतिक साधनाओं द्वारा इस व्यापक तत्त्व के साथ सम्बन्ध स्थापित करूँगा। और इस सम्बन्ध द्वारा दूसरों के मनों में भद्र भावनाओं का सञ्चार करूँगा। इसी मनस्तत्व के योग से मैं विश्व में दिव्य भावनाओं का विस्तार करूँगा।

मैं अपने मन का पूर्ण संयम करते हुए आदर्श त्यागपूर्ण दिव्य यज्ञीय जीवन व्यतीत करूँगा और अपने जीवन में ज्ञान योग की साधना द्वारा दक्षता संपादित करूँगा। मेरा जीवन दाक्षिण्य, विलक्षण बुद्धिमत्ता एवं दूरदर्शिता से संयुक्त रहेगा। मैं अपने विवेक से सतत कार्य करता हुआ विश्व में दिव्य जीवन की ज्योति जगाने वाला बनूंगा। मैं भली प्रकार साधना का धनी बन कर अपने अन्दर उस दिव्य परम ज्योति का साक्षात् करूँगा। उस अकथनीय अलौकिक ज्योतिः के पावन प्रकाश में स्वयं प्रकाशमान एवं ज्योतिमय बनकर दिव्य आनन्द का भोग करूँगा। सांसारिक सुख तो उस आनन्द के सम्मुख तुच्छ एवं हेय हैं, मैं कभी भूलकर भी सांसारिक सुख भोगने में लिप्त न हूँगा। यह सांसारिक भोग मुझे उत्थान के पुण्य मार्ग से भ्रष्ट कर पतन की ओर ले जाने वाले हैं अतः मैं दृढ़ संकल्प के साथ इन भोगों से ऊपर उठकर दिव्य सुख अर्थात् आनन्द की पावनी गंगा में ही अवगाहन करूँगा और संसार के मानवों को दिव्य सुधा का रसास्वादन कराऊँगा। दिव्य ज्योतिः के सान्निध्य से स्वयं ज्योतिर्मय बनकर विश्व को ज्योतिर्मय बनाऊँगा। बस यह ही मेरे जीवन की एकमात्र साधना हो, यही उस प्यारे प्रभु से मेरी विनति है कि मेरी यह साधना पूर्ण हो।

१६

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं
न स्वप्नाय स्पृहन्ति ।।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ।। ऋ० ८ । २ । १८

शब्दार्थ—(देवाः) विद्वान् मनस्वी मानव (सुन्वन्तं) परोपकार, निर्माण एवं उत्पादन करने वाले की (इच्छन्ति) कामना वा

सराहना करते हैं (स्वप्नाय) स्वप्नलोक में विचरने वाले कर्मयोग से दूर रहने वाले की (न) नहीं (स्पृहन्ति) कामना वा चाहना करते हैं। (अतन्द्राः) निद्रा, आलस्य, कर्म-हीनता से दूर रहने वाले अर्थात् जागरूक, उद्यमी, कर्मनिष्ठ मानव (प्रमादं) प्रमाद को (यन्ति) पार कर जाते हैं।

भावार्थ—यह संसार मानव के लिये महान् कर्मक्षेत्र है। निरन्तर कर्मयोग में लगे रहना और जीवन में अच्छे-से-अच्छे कर्मों का करना मानव का धर्म है। "चरन्वैति चरन्वैति" अर्थात् चलते रहने में ही मानव का कल्याण है। थक कर अर्थात् हिम्मत हार कर बैठ जाना कायरता है।

संसार में आकर अपने को बनाना और समाज के हित कुछ निर्माण करना मानव का पुनीत कर्त्तव्य है। केवल संसार के भोगों को भोगते जाना और प्रत्युपकार लेशमात्र न करना तथा निर्माण व उत्पादन से दूर रहना मानवता नहीं पशुता है। ऐसा भोगवादी मानव तो समाज के लिये भार रूप ही बन जाता है। यज्ञीय जीवन ही मानवता और यज्ञ शून्य जीवन यापन करना पशुता है।

स्वप्नों की दुनिया में विचरना और कर्त्तव्य कर्मों के अनुष्ठान से परे भागना मूर्खता है। देवों का प्यारा बनने के लिये आवश्यक है कि मानव निरन्तर प्रगति पथ पर आरूढ़ रहे और वास्तविकता को हृदयंगम कर जीवन में आगे बढ़ जाय।

जो मानव भोगवाद में लिप्त नहीं होते और आलसी कर्महीन बनकर जीवन यापन नहीं करते अपितु सतत कर्मयोग का अनुष्ठान करते हैं वे प्रमाद, मिथ्या अभिमान, दम्भ और आत्मवञ्चना से बचकर अपने जीवन का सही विकास करते और उसको धन्य बनाते हैं।

२०

इन्द्र आशाभ्यस्परि।
सर्वाभ्यो अभयं करत्।
जेता शत्रून् विचर्षणिः॥ ऋ० २-४१-१२

शब्दार्थ—(सर्वभ्यः) सर्व (आशाभ्यस्परि) दिशाओं में (इन्द्र)

परमेश्वर्यवान परमात्वदेव (अभयंकरत्) अभय कर दे वह (विचर्षणि) सर्वद्रष्टा एवं सर्वत्र विद्यमाम हैं और (शत्रून्) धर्म और मानवता के शत्रुओं को (जेता) जीतने वाले हैं।

भावार्थ—परमात्मदेव किसी लोक वा धाम विशेष में ही रहने वाले नहीं। किसी चौथे वा सातवें कल्पित आकाश में ही उनका निवास हो, सो बात भी नहीं है। वह तो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे सब दिशाओं तथा दिशाओं के कोणों में निवास करने वाले हैं। संसार का ऐसा कोई लोक नहीं, कोई नक्षत्र, ग्रह वा उपग्रह नहीं, जिसमें उनकी सत्ता समाई न हो। वह तो कण-कण में घट-घट में निवास करने वाले हैं। वह सर्वशक्तिमान् सकल सम्पदाओं के स्वामी हैं। धनी, श्रेष्ठी, राजा, महाराजाओं के भवनों, प्रासादों में वह विद्यमान हैं। दीन दुःखी, दरिद्री, कंगाल की टूटी कुटिया में भी उनका चरण पहुँचा हुआ है। वह केवल समर्थों के ही नाथ नहीं अपितु असमर्थों महा-अनाथों के भी नाथ है। वह तो केवल समर्थों के ही बल हों सो बात नहीं। वह तो असमर्थों, अनाथों, दीनों, दुखियाओं के परम बल और सहारे हैं।

वह हमें सब दिशाओं में प्रदिशाओं में अभय का दान देने हारे हैं। परमात्मा का भक्त संसार में कभी भय नहीं खाता, संकटों की घनघोर घटाओं में भी वह निर्भय होकर प्रगति करता, निवड़ अन्धकार में आन्तरिक प्रकाश के बल पर सदा आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है। धर्म पथ पर चलते हुए यदि उसका कोई साथ नहीं देता तो वह निराश होकर बैठ नहीं जाता अपितु एकाकी ही आन्तरिक ज्योति के बल पर जो प्रभुभक्ति के कारण उसको प्राप्त हुई है आगे की ओर ही अपना कदम बढ़ाता चला जाता है।

परमात्मदेव अपनी असंख्य दर्शन शक्तियों द्वारा संसार की हर वस्तु को देखते-प्राणीमात्र के प्रत्येक कार्य का ज्ञान रखते निश्चय ही सर्वत्र उनकी पहुँच है। वह मानवता के शत्रुओं का विनाश करते उनके बल की हानि करते उनके तेज को मन्द करते और उनको अपने न्यायनियम में जकड़ कर यथावत् दण्डित करने वाले हैं। उस परम-सखा, हितु, कल्याण कर्ता स्वामी को छोड़कर हम और किसकी उपासना करें। किसका सहारा पकड़ें। बस वह ही हमारे एकमात्र उपास्य देव हैं। हमारी वन्दना, अर्चना स्तुति के एकमात्र वही पात्र हैं।

२१

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते ।
पवस्व मधुमत्तमः ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ साम ५ । ६ । ६

शब्दार्थ—(इन्दो) हे दिव्य ऐश्वर्य के प्रदाता स्वामिन् ! आप (मधुमत्तमः) परम माधुर्य युक्त हो मुझ में (मरुत्वते) जीवन शक्ति प्रदान करने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य के निमित्त (पवस्व) पवित्रता उत्पन्न कीजिए (अर्कस्य) महान् प्रकाश पुञ्ज भास्कर की (योनिं) निमित्त कारण आपके (आसदम्) निकट बैठता हूँ ।

भावार्थ—प्राणनाथ प्रभो ! आप इन्द्र हो, दिव्य ऐश्वर्य के केन्द्र हो, मानव को आत्मिक विभूति आपके द्वारा ही उपलब्ध होती है । आप ही मानव के हृदय में प्रकाशित होकर उससे सच्चा सुख दिव्य सुख अर्थात् आनन्द प्रदान, करते हो ।

आप माधुर्य के भण्डार हो । आपसे अधिक मीठी, प्यारी वस्तु संसार में अन्य कोई नहीं है, आपकी उपासना द्वारा मैं माधुर्य में सराबोर हो जाता हूँ, जिधर देखता हूँ माधुर्य चहुँ ओर सरसता है ।

आपका यह दिव्य मधु जीवनी शक्ति का संचार करने वाला है । इस मधु का पानकर, इस आध्यात्मिकता के मद का आस्वादन कर मैं अपने को आत्मिक बल, शक्ति और तेज से संयुक्त करता हूँ और दिव्य विभूति अर्थात् ऐश्वर्य का धनी बन जाता हूँ । आप तो मधु के अगाध सरोवर हो बताओ उसके तीर को छोड़कर अब मैं कहाँ भटकता फिरूँ । मैं इस सरोवर के किनारे बैठकर अक्षय मधु का जी भर पान करूँगा अपने रोम-रोम को माधुर्य युक्त करूँगा, मेरे जीवन की नीरसता दूर भागेगी और दिव्य मद की मस्ती सर्वत्र छा जावेगी ।

प्रभो ! आप महान् प्रकाश के पुञ्ज हो । इस जगत् में प्रकाशमान् सूर्य भी आपके प्रकाश से ही प्रकाशित है । यही क्यों समस्त प्रकाशमय लोकलोकान्तर आपसे ही प्रकाश पाते हैं । आप तो इन सबके निर्माता और प्रकाश

युक्त करने वाले हो। मैं फिर इस भौतिक सूर्य की उपासना में अपने जीवन को क्यों खपाऊँ क्यों न उस प्रकाशों के प्रकाश ज्योतियों की महान् ज्योति की उपासना में संलग्न हो जाऊँ। यह सूर्यादि तो भौतिक प्रकाश के ही पुञ्ज हैं किन्तु आप तो दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश के केन्द्र हो। भौतिक प्रकाश से तो मेरा भौतिक शरीर इन्द्रियाँ आदि ही उपकृत हो सकती हैं। मेरे आत्मा का अन्धेरा इनसे मिटने वाला नहीं। मुझे तो आवश्यकता है आत्मिक प्रकाश की। आपसे भिन्न अन्य आध्यात्मिक प्रकाश का केन्द्र इस संसार में है नहीं। अतः मैं आपके अतिरिक्त अन्य किसी की उपासना में कभी भूलकर भी अपने समय और शक्ति का क्षय न करूँगा।

२२

इन्द्र वाजेषु नोऽव।
सहस्र प्रधनेषु च।
उग्र उग्राभिरूतिभिः॥ ऋ० १-७-४

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् दुःख दारिद्रय विनाशक परमात्मदेव (नः) हमारी (उग्राभिः) तेजस्विनी (ऊतिभिः) रक्षा के साधनों द्वारा (वाजेषु) यज्ञों में (अव) रक्षा करो (च) और (सहस्र) असंख्य (प्रधनेषु) संग्रामों में रक्षा करो।

भावार्थ—हे सकल ब्रह्माण्ड के स्वामी, परम ऐश्वर्य के भण्डार, दुःख दरिद्रता का विनाश करने हारे परमेश्वर! आप उग्र हैं परम तेजवान हैं आपकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती। आपके दिव्य तेज के सामने कोई ठहर ही नहीं सकता। आप तो प्राणीमात्र के दुःख दैन्य और दरिद्रता का विनाश करने वाले हो। अपने ही दुष्ट कर्मों के कारण हम दुःखादि में फंसते हैं। आप तो हमारे हृदय मन्दिर में विशेष रूप से विराजमान होते हुए सदा श्रेष्ठ कर्मों के करने की हमको प्रेरणा देने वाले हैं। हम अपना जीवन यज्ञीय अर्थात् त्याग एवं परोपकारमय बनावें, यह ही आपकी सतत प्रेरणा हमारे लिए रहती है। और जिस समय भी हम त्याग और परोपकार

के पथ पर चलना आरम्भ कर देते हैं आप असंख्य प्रकार से अनगिनत रूपों में हमारी रक्षा करते और हमें उस पथ पर चलने की शक्ति और साहस प्रदान करते हो।

हमारे जीवन में नाना प्रकार के संकट, भय और आपत्तियाँ आ आकर हमको घेर लेती हैं और सत्पथ से विचलित करने का प्रयत्न करती हैं किन्तु आप हमें बल, शक्ति और साहस प्रदान कर उनका सामना करने की प्रेरणा देते और सामना करने में समर्थ बनाते हो। भयङ्कर-से-भयङ्कर संग्रामों में, दुष्ट अत्याचारी आततायी के आक्रमणों में आपकी रक्षा का वरदहस्त हमारे ऊपर रहता है। अत्याचारियों के बल को निस्तेज बनाना, उनके साहस को क्षीण करना और उनके अन्दर भय, लज्जा, संकोच को उत्पन्न करना आपका ही कार्य है।

प्रभो! हमें बल दो, शक्ति दो, साहस और धैर्य दो जिससे हम पुण्य मार्ग से कभी विचलित न हों और प्रबल एव भयङ्कर शत्रु का सामना करने में समर्थ हों। आप ही हमारे सवसे बड़े सम्बल, सहायक और सखा हो।

२३

इन्द्रं प्रातर्हवामहे।
इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
सुते हि त्वा हवामहे॥ ऋ० १-१६-३

शब्दार्थ—(इन्द्रं) परमैश्वर्यवान् दुःख विनाशक परमात्मा को (प्रातः) प्रभात वेला में (हवामहे) हम सब मिलकर प्रेम पूर्वक पुकारें (इन्द्रं) परमात्मा को (प्रयति) पवित्र (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञों में पुकारें (सुते) निष्पन्न किए हुए, ध्यान योग द्वारा प्रत्यक्ष किये जाने वाले (हि) निश्चय पूर्वक (त्वा) तुझको (हवामहे) हम सब पुकारते हैं।

भावार्थ—निशीथकाल में गाढ़ निद्रा लेने के उपरान्त ऊषाकाल की आगमन वेला में उठकर शौचादि से निवृत हो एवं स्वस्थचित्त होकर उस

परश्मैवर्यंवान् सर्व-व्यापक प्राणनाथ प्रभु का आवाहन करना चाहिये। चित के चलायमान रहने पर परमात्मा का आवाहन सिद्ध नहीं होता। सन्ध्या सफल तब ही होती है जब चित्त स्वस्थ और एकाग्र हो।

सर्वहित कामना से युक्त होकर दूसरों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाते हुए और सबके भले में अपना भला समझते हुए निरन्तर परोपकार के कार्यों में मानव को युक्त रहना चाहिये। अपने लाभ के लिये दूसरों को हानि पहुँचाना पामरता और ईश्वर द्रोह है, नास्तिकता और शठता है। अपने से यदि किसी को लाभ नहीं पहुँच सकता तो कम-से-कम किसी को हानि तो पहुँचानी ही नहीं चाहिए। श्रेष्ठ आस्तिक मनुष्य का धर्म तो यह है कि वह स्वयं हानि उठाकर और आवश्यकता पड़ने पर अपने जीवन तक को खतरे में डाल कर परहित साधन करे। धर्म के परवानों का काम तो पराई आग में स्वयं जल मरना है। अपने को मिटाकर दूसरों को उठाना मानव का श्रेष्ठ धर्म है।

इस श्रेष्ठ धर्म का पालन करने वाला मानव ही यथार्थ में उस इन्द्र के आवाहन करने का विशेष अधिकारी है। जो स्वयं परोपकार की अग्नि में तपा है वह ही तो उस दिव्य अग्नि की सच्ची उपासना कर सकता है।

केवल शाब्दिक आवाहन अथवा नाम कीर्तन से प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं। ज्ञानयोग द्वारा उस प्राणनाथ प्रभु के गुण कर्म एवं स्वभावों को हृदयंगम करना होगा। परमात्मदेव के पावन स्वरूप का दर्शन अपने मानस नेत्रों से करना होगा। ध्यान योग के संघर्षण से दही में अन्तर्हित घृत की भाँति उसका मन्थन करना होगा। काष्ठ में छिपी अग्नि की भान्ति ध्यान के संघर्ष से प्रदीप्त करना होगा और इस प्रकार प्रदीप्त उस दिव्य अग्नि का, परमैश्वर्यवान् इन्द्र का, आवाहन करने से भक्तिभाव से गदगद होकर उसको पुकारने से वह प्यारे प्रभु निश्चय भक्त के हृदय में प्रकट होंगे और उसको अपना दिव्य दर्शन देकर उसके जीवन को सफल करेगे। आओ हम सब मिलकर सच्ची साधना और भक्ति से उसका आवाहन करें और अपने जीवन को सफल बनावें।

२४

इन्द्र सौमस्य पीतये ।
स्तोमैरिह हवामहे ।
उक्थेभिः कुविदागमत् ।। ऋ० ३ । २७ । २

शब्दार्थ—(सोमस्य) जीवन रस के (पीतये) पान करने के लिये अथवा संरक्षण करने के हेतु (इह) इस जीवन में (स्तोमैः) स्तुति गान द्वारा (इन्द्रं) सर्वव्यापक परमात्मदेव का (हवामहे) हम आवाहन करते हैं। (उक्थेभिः) वैदिक ऋचाओं द्वारा (कुविद्) वेदज्ञ विद्वान् (आगमत्) वेदवाणी के रहस्य को प्राप्त होता है।

भावार्थ—जीवन-रस अर्थात् आध्यात्मिक सुधा को, वेहदानियत के सरूर को, प्राप्त करने के लिये, इस रूहानी मस्ती को हासिल करने के लिये अथवा इस आध्यात्मिक मधु का पान करने के लिये मानवों को चाहिये कि वह भक्ति-रस में डूबे हुए मधुर जीवन-संगीतों का, जीवन को तरंगित करने वाले गीतों का गान करें और इस संगीत द्वारा विश्वव्यापक, प्राणाधार प्रभु का अपने मन मन्दिर में आवाहन करें। उसकी पावन ज्योति को जागृत करें।

यह मानव-जीवन यदि इस भक्तिरस से शून्य है, इस वहदानियत के सरूर से खाली है और आध्यात्मिक मधु का इस जीवन में यदि आस्वादन नहीं किया और इस मस्ती में झूम-झूम कर यदि उस प्यारे मनमोहक का आवाहन नहीं किया गया तो मानव-जीवन निस्सार है।

विश्व के प्राचीनतम नैसर्गिक अमर काव्य वेद की पावनी ऋचाओं द्वारा यदि मानव ने अपने आपको परिष्कृत नहीं किया, वेद मंत्रों के रहस्य को हृदयंगम कर यदि उसका प्रेम पूर्वक मनन नहीं किया तो केवल मंत्र पाठ से उसका कोई विशेष हित होने वाला नहीं। वेदों के मंत्र तो संसार की समस्त भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा में हैं जो भाषा पूर्ण वैज्ञानिक एवं ध्वन्यात्मक हैं। थोड़ा-सा ही प्रयत्न मानव को उसके रहस्य के समीप पहुँचा देने वाला है। वेद किसी देशविशेष की वा जाति विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। वह तो

मानव मात्र की चिरन्तन सम्पत्ति है। उससे लाभ उठाने का अधिकार मानव-मात्र को है। अतः आओ हम वेद की पावनी ऋचाओं के रहस्य को हृदयंगम करने में प्रयत्नशील हों, और गायत्री आदि छन्दों में उन ऋचाओं का गान करें, और गान करते-करते उसके रहस्य को मानस नेत्रों से देखें और आध्यात्मिक मस्ती में सराबोर हो जाएँ।

२५

इन्द्रं वो विश्वतस्परि।
हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः॥ ऋ० १।७।१०

शब्दार्थ—(वः) हम सबों के जो (विश्वतस्परि) सब ओर विराजमान हैं ऐसे (इन्द्रं) परमात्मदेव को (जनेभ्यः) प्राणीमात्र के कल्याण लिये (हवामहे) हम आवाहन करते हैं बस (केवलः) वह अद्वितीय परम ब्रह्म परमात्मा (अस्माकं) हम सबों के (अस्तु) उपास्य देव हों।

भावार्थ—परमात्मदेव कण-कण में समाए हुए हैं संसार का कोई कोना ऐसा नहीं जहाँ वह स्वयं अपनी सत्ता से विद्यमान न हों। सर्वव्यापी प्रभु अपनी शक्ति से ही केवल नहीं, अपितु अपनी सत्ता से सर्वत्र विद्यमान हैं।

परमात्मदेव अपने सहज स्वभाव से प्राणीमात्र का भला करने वाले हैं किसी की सिफारिश की उनके दरवार में पहुँच नहीं और न किसी की खुशामद से वह द्रवित होने वाले हैं। पुण्य-आत्मा से लेकर दीन अनाथ असहायों तक का कल्याण करना और पापात्मा समर्थ शक्तिशाली तक को दण्ड देना उनका नियम है। वह तो पूर्ण न्यायकारी हैं। उनके न्याय में उनकी अपार दया ओतप्रोत है, अप्रसन्न होकर अथवा बदले की भावना से कभी किसी को दण्ड नहीं देते; अपितु जीव के हित उसके उत्थान एवं कल्याण के निमित्त ही उसको दण्ड देते हैं।

हमें केवल अपने कल्याण के लिये ही नहीं अपितु संसार के कल्याण के

लिये उस प्रभु का आवाहन करना है। जब वह प्राणीमात्र के पिता हैं अर्थात् पालन करने हारे हैं तब हम केवल अपने लिये उनको पुकारें. यह तो संकुचित भावना है और इस संकुचित भावना के साथ उस भूमा अर्थात् महान् विशालतम प्रभु का कोई सम्बन्ध नहीं।

वह प्रभु एक और अद्वितीय हैं। उन जैसा अथवा उनसे महान् अन्य कोई द्रव्य संसार में नहीं। उनकी उपासना त्याग कर अन्य किसी जड़ पदार्थ की उपासना करना अथवा जीव को अपना इष्टदेव बनाना मूर्खता है। विश्व-व्यापक अग्नि को त्यागकर कंकर की उपासना करना हमारे लिये शोभा नहीं देता। उस दिव्य अग्नि की उपासना से ही हमें आध्यात्मिक तेज, ज्योतिः प्रकाश उपलब्ध होगा। जड़ कंकर की उपासना से सिवा जड़त्व के अन्य कुछ मिलनेवाला नहीं। चैतन्य जीवों की उपासना से जहाँ उनके गुणों को हम धारण कर सकेंगे, वहाँ उनके अवगुणों का भी प्रभाव हमारे ऊपर निश्चित पड़ने वाला है। अतः उस निष्कलंक, दोष-रहित परमात्मतत्त्व की उपासना से ही हमारा यथार्थ कल्याण सिद्ध होने वाला है। अतः आओ हम सब केवल उस एक पवित्रतम प्रभु के ही उपासक बनने का सदा प्रयत्न करें।

२६

इन्दुः पविष्ट चेतनः।
प्रियः कवीनां मतिः।
सृजदश्वं रथीरिव ॥ सा० ५-१०-५

शब्दार्थ—(इन्दुः) आह्लाद के देने वाला (चेतनः) सत्कर्मों की ओर प्रेरणा देने वाला (पविष्टः) हमारे अन्दर पवित्रता का सञ्चार करने वाला है। (प्रियः) प्राणों का प्यारा (कवीनां मतिः) क्रान्त-दर्शी योगी जनों के मननका केन्द्र बिन्दु (रथीः) वीर योद्धा की (इव) भाँति (अश्वं) घोड़े को (सृजत्) साधने वाला है।

भावार्थ—संसार में उस प्राणनाथ प्रभु से भिन्न अन्य कोई वस्तु अधिक प्रिय नहीं है। संसार का सकल ऐश्वर्य तथा सारे सगे-सम्बन्धी जो मानव के

प्रिय होते हैं सब अस्थायी है और मोह मिश्रित प्रेम के कारण यह विछोह के समय दुःख के कारण बन जाते हैं किन्तु वह प्रियतम नाथ तो हमारा सनातन सगा सम्बन्धी है उसका कभी विछोह होता ही नहीं और विशुद्ध प्रेम का आधार होने के कारण वह तो जीवन में सदा ही आन्तरिक हर्ष उल्लास और आनन्द का देने हारा है।

वह प्रभु स्वयं सनातन से परमपवित्र और मानव को पवित्रता की ओर सदा प्रेरणा देने वाला है। सत्कर्मों के अनुष्ठान में बल एवं शक्ति का सञ्चार करने वाला और उत्तरोत्तर हर्ष और आनन्द से युक्त करने वाला है।

संसार के समस्त क्रान्तदर्शी तत्ववेत्ता ध्यानी योगी जनों की साधना का वह केन्द्र बिन्दु है। उनके लिये तो वह निश्चय ही एकमात्र ध्यान एवं मनन किया जाने वाला दिव्यतत्व है, उसको छोड़कर अन्य किसी जड़-चेतन वस्तु का ध्यान एवं चिन्तन कभी कोई क्रान्तदर्शी मानव नहीं करता।

चतुर सवार जिस प्रकार अपने अश्व को साधता है और निर्दिष्ट मार्ग पर उसको द्रुतगति से दौड़ाता है उसी प्रकार वह परम चतुर सारथी सत्कर्मों के पवित्र पथ पर दौड़ लगाते हुए ध्यान एवं कर्मयोग के साधक जनों को सदा साधे रहता है और उनको आत्मिक बल से युक्त करता है। जब कभी वह मानव प्रमादवश पथ से विचलित होने लगता है तो वह परमदयालु सखा अपनी प्रेरणारूपी लगाम से उसको पथभ्रष्ट होने से बचाता है।

२७

इमं मे वरुण श्रुधी।
हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युराचके ॥ ऋ० १-२५-१९

शब्दार्थ—(वरुण:) वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ (इमं) इस (मे) मेरी (हवं) प्रार्थना वा पुकार को (श्रुधी) श्रवण करो (अद्य च) और अविलम्ब (आ मृडय) सम्यक् प्रकार से आनन्दयुक्त करदो। (अवस्युः) दया, कृपा वा सहायता की याचना करने वाला

(त्वां) तुझ को (आचके) सम्यक् प्रकार से याचना करता है।

भावार्थ—उस प्यारे प्रभु की खोज में अपने जीवन में न जाने मैं कहाँ-कहाँ भटकता फिरा हूँ। अनेक गिरि-कन्दरा, कान्तारों एवं जड़-तीर्थों को छाना किन्तु उसका कहीं पता नहीं पाया। अनेक नामों से और उच्च स्वर से उसे पुकारा किन्तु उस विचित्र मीत ने कहीं सुनवाई न की। मैंने उसको ही एकमात्र अपना उपास्यदेव माना और सब से किनारा किया किन्तु इस पर भी उसको तरस न आया। आज मुझे यह पता चल गया है कि वह प्यारा मीत मेरे अन्दर ही विशेषरूप से छिपा बैठा है अतः बाहिर न पुकार कर अब मैं अन्दर-ही-अन्दर उसका भक्ति भावना से आवाहन करूँगा। मुझे विश्वास है कि अब वह मेरी पुकार सुनेगा और अवश्य सुनेगा और मुझे अपने दिव्य-दर्शन से कृतार्थ कर आनन्दित करेगा।

अब तो मैं अपने जीवन की अनेक घड़ियाँ प्रतिदिन उसकी उपासना में लगाऊँगा और उसकी दिव्य ज्योतिः का दर्शन कर प्रकाश युक्त बनूंगा। मैंने बस अब एकमात्र उसका ही सहारा पकड़ लिया है। रक्षा की याचना करूँगा तो वस उसी से, कृपा और सहायता की कामना करूंगा तो उसी से। बल, तेज, विक्रम और ओज की भीख मांगूंगा तो केवल उसी से। असली दाता तो वही है और उसी के दान से मेरा कल्याण होने वाला है।

२८

इह त्वष्टारमग्रियम्।
विश्वरूपमुपह्वये।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ ऋ० १-२५-१०

शब्दार्थ—(इह) इस जीवन में (विश्वरूपं) सारे विश्व को रूप के देने हारे अथवा सारे विश्व में प्रकाशित होने वाले (अग्रियं) सबसे श्रेष्ठ एवं महान् अथवा सृष्टि-रचना के पूर्व भी एकरस विद्यमान रहने वाले (त्वष्टारं) विश्व का निर्माण करने हारे तथा निज सत्ता से उसको ढाँपने वाले को (उपह्वये) निकटतम पहुँचकर अर्थात्

अन्तरात्मा में पुकारता हूँ (केवलः) एक अद्वितीय प्रभु (अस्माकं) हम सबका (अस्तु) उपास्य हो जावे।

भावार्थ—सतत सत्प्रयत्नों द्वारा मैं निश्चय अपने इसी जीवन में उसी सकल ब्रह्माण्ड के निर्माणकर्त्ता, असंख्य योनियों के विधाता और कण-कण में निजसत्ता से विद्यमान प्यारे प्रभु का जो सब से श्रेष्ठ और महान् है सब का नेता और नियन्ता है और सृष्टि रचना के पूर्व भी निज सत्ता से सदा एक-रस विद्यमान रहने वाला है उसका अपनी अन्तरात्मा में सफल आवाहन करूँगा। उसका दिव्य-दर्शन कर जीवन के सकल पाशों का उन्मूलन करूँगा। अब मैं बाह्य संसार में अधिक न भटकूंगा। संसार की चकाचौंध मुझे अब अन्धा न बना सकेगी। नाना योनियों में भटकता फिरा हूँ और अनेक जीवनों में अनगिनत यातनाएँ मैंने सहन की हैं। अब उनसे त्राण पाने के लिये मैं इस नरतन में जो उस अहेतुक दयासिन्धु की अनुपम कृपा से मुझे उपलब्ध हुआ है, निश्चय सच्चे हृदय से शक्ति-भर प्रयत्न करूँगा।

वह मेरा प्यारा सच्चा सखा निश्चय एक है, उस जैसा दूसरा अन्य कोई नहीं है। वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचे ऊपर सर्वत्र एकरस निज-सत्ता से व्याप रहा है।

उसके स्वाभाविक ज्ञान, बल एवं क्रियाएँ असीम और महान् हैं। वह हमारा है। हमारा रक्षक और पालनकर्त्ता है। उसकी दया का हाथ सर्वत्र व्याप रहा है। मुझे वह अपनी दया से कभी वंचित करने वाला नहीं। मैंने अब दृढ़तापूर्वक उसका सहारा पकड़ लिया है, वह छुड़ाकर भागने वाला नहीं। वह तो मुझे अपनी आनन्दमयी गोद में बिठाने वाला है। अतः मैं अब एकमना उसकी उपासना करूँगा और निश्चय इस जीवन में अपने अभीष्ट को सिद्ध करके ही रहूँगा।

२६

ईडे अग्नि विपश्चितम्।
गिरा यज्ञस्य साधनम्।
श्रुष्टिवानं धितावानम्॥ ऋ०-३-२७-२११

शब्दार्थ—(गिरा) अपनी वाणी द्वारा (विपश्चितं) परम विद्वान्, ज्ञानी

(यज्ञस्य साधनम्) दिव्य कर्मों को सिद्ध कराने वाले (श्रुष्टिवानं) अत्यन्त पवित्रता कारक (धितावानम्) महान् हितकारी (अग्निं) सर्वज्ञ सर्वव्यापक परमात्मदेव का मैं (इडे) स्तवन करता हूँ।

भावार्थ—परमात्मदेव गुरुओं के गुरु और ज्ञानियों के परम ज्ञानी हैं अर्थात् ज्ञानियों के भी ज्ञान के पावन स्रोत हैं। उनका ज्ञान पूर्ण और अनन्त है। प्रभु का ज्ञान तो कभी घटने-बढ़ने वाला भी नहीं। वह तो सदा एकरस विद्यमान रहता है। अज्ञान का उस पर कभी आवरण भी आने वाला नहीं। देश, जाति, राष्ट्र एवं मानव के कल्याण के निमित्त किये जाने वाले स्वार्थ एवं द्वेष भावना से सर्वथा रहित दिव्यकर्मों के अनुष्ठान में वह मानव को सदा शक्ति व बल का प्रदाता है। वह प्रभु तो निश्चय मानव की पापवृत्तियों अज्ञान, मलिनता तथा अशुचिता का निवारण करने वाला है। सदा प्रगति पथ पर मानव को चलने की प्रेरणा देना उस परमदयालु पिता का स्वभाव है। किन्तु मानव यदि अपनी मलिनतावश उस प्रेरणा की अवज्ञा करे तो यह उसका दुर्भाग्य है। परमात्म देव तो स्वभाव से ही प्राणी मात्र का हित साधने वाले हैं। जीव के लिए अपने निज पाप कर्मों का फल भोग अनिवार्य है। कोई भी इस फल भोग के बन्धन से बच ही नहीं सकता किन्तु इस फल भोग में भी तो उस प्यारे प्रभु की दया अन्तर्हित है। प्रभु के न्याय में निश्चय ही दिव्य दया का वास है।

उस परम ज्ञानी में अखिल ब्रह्माण्ड का ज्ञान अन्तर्हित है। वह प्रत्येक जीव के अन्दर निवास करने के कारण उसकी समस्त भावनाओं और कृत् कर्मों को जानने वाला है। अतः मैं निष्कपट भाव से पवित्र की हुई अपनी वाणी द्वारा उसका स्तवन, वन्दन और कीर्तन करने वाला बन जाऊँ अर्थात् प्रभु के सगुण व निर्गुण रूप का दृष्टा बन जाऊँ।

बस यही मेरे इस जीवन की साधना है।

३०

उदुत्यं जातवेदसम् ।
देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ऋ० १-३-११

शब्दार्थ—(उत्) निश्चय (उ) ही (त्यं) उस (जातवेदसं) समस्त उत्पत्तिमान विश्व का ज्ञान रखने वाले (सूर्यं देवं) महान् ज्ञान के केन्द्र एवं प्रकाश के महान् स्तम्भ दिव्य देव के (विश्वाय दृशे) सम्यक् दर्शन करने में (केतवः) मलिनता से ऊपर उठी हुई हमारी बुद्धियाँ (वहन्ति) हमारा वहन करती हैं।

भावार्थ—मानव के अपने इस जीवन में उस परमात्मा का दर्शन नहीं-नहीं सम्यक् दर्शन असम्भव नहीं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि मानव को उसके दर्शन की चाह हो और तदनुसार उसका सत्प्रयत्न भी हो। वह प्रभु तो घट-घट वासी हैं और हमारे कर्मों एवं भावों के जानने वाले हैं। उनसे हमारा कोई भी संकल्प छिपा नहीं। जब उनके दर्शन की चाह वास्तविक होगी तो निश्चय वह हमारे अन्दर अपनी दिव्य ज्योति का प्रकाश करेंगे। वह प्रभु तो प्रकाश के महान् स्तम्भ हैं। उनका प्रकाश सर्वत्र समाया हुआ है। ज्ञानचक्षु द्वारा हम उसकी अनुभूति सर्वत्र कर सकते हैं। अपने तथा उनके मिलन स्थान हृदय में हम उनकी ज्योतिः का दिव्य दर्शन भी कर सकते हैं।

आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम अपनी बुद्धियों को निर्मल बनावें। पाप वासनाओं एवं कुटिलताओं से उनको ऊपर उठावें। यह पवित्र परिष्कृत आभायुक्त बुद्धियां निश्चय हमको उन तक पहुँचाने में हमारी साधक होंगी। उस प्रभु के द्वार पर ले जाकर ये बुद्धियाँ हमें खड़ा कर देने वाली होंगी। आगे उस द्वार में प्रवेश करना हमारा अपना कार्य होगा। हम प्रवेश करेंगे तो प्रभु दर्शन हमें निश्चय उपलब्ध होगा।

३१

उपत्वाग्ने दिवे दिवे ।
दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ।। ऋ० १-१-७ ।।

शब्दार्थ—(अग्ने) हे सर्वज्ञ, सर्वव्यापक परम ज्योतिस्वरूप प्रभो ! (वयं) हम उपासकजन (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) रात्रि एवं दिन के समय में (नमो भरन्तः) श्रद्धा एवं भक्ति भावना को धारण करते हुए (धिया) ध्यानयोग द्वारा (त्वा) तेरे (उप एमसि) समीप में पहुँचने का प्रयत्न करें।

भावार्थ—प्रभु को पाने के लिए मानव को निरन्तर अभ्यास करना होगा रात्रि और दिन तथा इन दोनों की सन्धि वेलाओं में विशेष रूप से अभ्यास में संलग्न होना होगा। यह रजनियाँ जिनमें मानव पाप वासनाओं में प्रायः रत होता और निकृष्ट आमोद प्रमोदों में फँस जाता है हमें इनमें जागरूक रहना होगा। दिवास की वेला जिसमें मानव सांसारिक कार्यों में निरत रहता है और धर्माधर्म का भी प्रायः विचार न कर जीवन के क्रियाकलाप रचता रहता है उसमें भी सावधान होना होगा।

मानव को अपनी बुद्धि की मलिनता को दूर हटाना होगा। बुद्धि पर जिन कार्यों के करने से मलिनता का आवरण छा जाता है उनसे उसे बचाना होगा। बुद्धि को परिष्कृत एवं ज्योतिष्मती बनाए बिना मानव का कल्याण नहीं। श्रद्धा एवं भक्तिभावों से हृदय को भरने का भी मानव को प्रयत्न करना होगा ?

जैसे ही बुद्धि परिष्कृत हुई और हृदय भक्ति भावनाओं से युक्त हुआ कि फिर उस पावन प्रभु के पास पहुँचने में देर का काम नहीं। यह ज्योतिष्मती बुद्धि हमको निश्चय उस परम प्रकाश पुञ्ज के द्वार तक ले जाने वाली है। पवित्र हृदय की भक्तिभावना हमें उसके अत्यन्त समीप पहुँचा देने वाली है।

३२

उप त्वा सातये नरो।
विप्रासो यन्ति धीतिभिः।
उपाक्षरा सहस्रिणी॥ ऋ० ७-१५-९

शब्दार्थ—(विप्रासः) ज्ञान के धनी (नरः) कर्त्तव्य निष्ठ मानव (त्वा) तुझ को (सातये) दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त धीतिमिः) भक्ति एवं ज्ञान की प्रखर किरणों द्वारा (उप-यन्ति) प्राप्त होते हैं (उप) तेरे सामीप्य को प्राप्त होकर (सहस्रिणी) असंख्य (अक्षरा) दिव्य अमृत धाराओं में अवगाहन करते हैं।

भावार्थ—मानव को कर्त्तव्य कर्मों के अनुष्ठान में पूर्ण मनोयोग से संलग्न रहना चाहिए। और साथ ही ज्ञान योग की उपासना भी करते जाना चाहिये। बिना ज्ञान के उस प्रभु का दर्शन सम्भव नहीं। ज्ञान एवं कर्म की सतत उपासना करते हुए भक्तियोग की साधना भी करनी होगी। बिना ज्ञान एवं कर्म के भक्ति योग की सिद्धि सम्भव नहीं। अर्थात् ज्ञान-कर्म-भक्ति की युगपत् साधना द्वारा मानव दिव्य ऐश्वर्य को प्राप्त करने मे समर्थ हो सकता है।

वह प्रभु असंख्य दिव्य ज्योति की किरणों का अद्वितीय पुंज है। असंख्य अमृतधाराओं का दिव्य स्रोत है।

बाहर के पट बन्द होने पर ही अन्तर्पट खुल पाता है। जब तक यह बाहर का पट खुला रहता है अर्थात् ज्ञान इन्द्रियाँ बाह्य विषयों की ओर भागती रहती हैं और मनवा भी उन्हीं के व्यापार में सन्नद्ध रहता है प्रभु के समीप में आत्म-देव का पहुँचना अर्थात् आवरण के पर्दे को हटाना सम्भव नहीं। अभ्यास के द्वारा जब मनवा ज्ञानेन्द्रियों पर अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर लेता है और आन्तरिक जगत् में अपने राजा आत्मा के साथ चलने लगता है तब निश्चय अन्तर्पट हटने लगता है। पवित्र कर्मों के संस्कार एवं निष्कपट भक्ति की धारा आत्मदेव को परम प्रभु के साम्राज्य में पहुँचा देती है जहाँ वह

दिव्य ज्योति (जलाल) एवं अमृत अर्थात् आनन्ददायिनी अजस्र धारा में निमग्न हो जाता है।

३३

एक इत् तमुष्टुहि।
कृष्टीनां विचर्षणिः।
पति र्जज्ञे वृषक्रतुः॥ ऋ० ६-४५-१६।

शब्दार्थ—परमात्म देव (एकः) अद्वितीय है (इत्) निश्चय करके (तं) उसका (स्तुहि) स्तवन करो। वह (कृष्टीनां) ज्ञानी मानवों का (विचर्षणिः) प्यारा सखा है (पतिः) प्रतिपालक है (वृषक्रतुः) श्रेष्ठतम उपास्यदेव है। (जज्ञे) निरन्तर उनका हित करता है।

भावार्थ—परमात्मदेव एक है, अद्वितीय है। उसके समान अथवा उससे महान् अन्य कोई दूसरा नहीं है। वह कण-कण में रमा हुआ है। प्रत्येक जीव के अन्दर भी सूक्ष्मतम होने से विद्यमान है। ज्ञानी मानवों का वह परम सखा है और ऐसा सखा है कि जिसका कभी विछोह नहीं होता। ज्ञानी मानव ही अपने ज्ञान चक्षु द्वारा अपने अन्दर उसकी अनुभूति ले सकता है। ज्ञानी जनों को वह सदा निकट तम है और अज्ञानी जनों से वह दूरातिदूर है। अज्ञानका पर्दा पड़ा रहने के कारण निकटतम होते हुए भी वह उनको दिखलाई नहीं देता। अज्ञानी मानव बाह्य संसार में उसको खोजता फिरता है किन्तु कहीं उसका पता नहीं पाता। जब ज्ञान चक्षु खुल जाता है और अपने अभ्यास द्वारा वह उसकी खोज करता है तो निश्चय वह उसको अपने समीप विराजमान पाता है।

परमात्मदेव कीड़ी से कुञ्जर तक प्राणीमात्रका पालन करने वाले हैं और अपने उपासकों को तो वह नानाविधि भयंकर पतन के गर्तों से बचाने वाले हैं। परमात्मदेव की उपासना ही मानव का यथार्थ त्राण करने वाली है।

वह धारा प्रभु तो अहेतुक दयासिन्धु है। यह सारा संसार और संसार की नाना वस्तुएँ प्राणियों के कल्याणार्थ ही उसने रची हैं। ज्ञानी-जन इन

वस्तुओं का सदुपयोग कर अपने जीवन को सफल बना लेते हैं और अज्ञानी दुरुपयोग कर दुःख सागर में गोते खाते हैं। बस, वह प्रभु ही एकमात्र सबका उपास देव है। अतः आओ हम सब मिलकर उसकी उपासना करें और अपने जीवनों को सफल बनावें।

३४

कया नश्चित्र आभुवत् ।
ऊती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठयावृता: ।। यजु० २७-३६

शब्दार्थ—(नः) हम सब प्राणियों के निमित्त (चित्र ऊती) विचित्र संरक्षण शक्ति (कया) किसके द्वारा (आभुवत्) प्रकट हुई (सदावृधः) सदा पूर्ण महत्व के साथ एक रस विद्यमान (सखा) सबका मित्र परमात्मा (कया) अपनी आनन्ददायिनी (शचिष्ठया) शक्ति द्वारा (वृता) आवृत हैं।

भावार्थ—असंख्य लोकलोकान्तरों को धारण करने वाली, असंख्य योनियों में असंख्य जीवों का संरक्षण करने वाली, प्रत्येक देहधारी के निमित्त जीवन की आवश्यक वस्तुओं को जुटा कर उनका संरक्षण करने वाली, विचित्र अद्भुत महती शक्ति का प्रादुर्भाव किससे हुआ अथवा उसका आधार क्या है? इस प्रश्न का उत्तर एकमात्र सनातन आधार सदा अपने पूर्ण महत्त्व के साथ एकरस विद्यमान प्राणीमात्र का सखा प्राणीमात्र का मित्र अर्थात् विनाश से प्राणियों को बचाने हारा और सत्पथ की प्रेरणा देने वाला वह प्यारा प्रभु ही है। वह प्यारा प्रभु तो अपनी असख्य भुजाओं द्वारा अपनी संरक्षण शक्तियों द्वारा प्राणीमात्र का उनके असंख्य स्थूल व सूक्ष्मशरीरों में सदा पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोको में संरक्षण करने वाला है।

उस प्यारे प्रभु की यह संरक्षण शक्ति दिव्य महती और कल्याणकारिणी है। हम सदा उस अहेतुक दयासिन्धु की दिव्य संरक्षणशक्ति द्वारा इस ब्रह्माण्ड में सुरक्षित हैं।

जीवन के प्रत्येक क्षण में उसकी महती संरक्षण-शक्ति हमारे साथ विद्यमान रहती है। हमें चहुँ ओर से उस शक्ति ने आच्छादित किया हुआ है। हम उस अपने परम सखा की संरक्षण शक्ति की अनुभूति लेने वाले यदि बन जायें तो फिर हमें संसार में किसका भय सता सकता है! समस्त दिशाएँ और प्रदिशाएँ हमारे लिये निर्भयता का सन्देश देने लगती हैं। भयंकर शत्रु के संहार में भी निर्भयता हमारा साथ देने लगती है हम तो मृत्यु तक का भी आलिंगन निर्भयतापूर्वक करने वाले बन जाते हैं।

३५

कविमग्निमुपस्तुहि।
सत्यधर्माणमध्वरे।
देवममीव चातनम्॥ साम० १-३-१२

शब्दार्थ—(कविं) क्रान्तदर्शी (अग्निं) प्रकाश एवं ज्ञान के पुञ्ज की (अध्वरे) हिंसाशून्य यज्ञीय कर्मों में (सत्यधर्माणं) सन्मार्ग के प्रदर्शक की (देवं) दिव्य गुणनिधान की (अमीवचातनम्) सदा अमृतकी वर्षा करने हारे की (उपस्तुहि) समीप में पहुँचकर स्तुति करो।

भावार्थ—वह प्राण प्यारा प्रभु क्रान्तदर्शी है। हमारे आन्तरिक भावों और संकल्पों तक को जानने वाला है। उससे कुछ भी छिपा नहीं है। वह ज्ञान एवं प्रकाश का महान् पुञ्ज है। हिंसाशून्य परोपकारमय पवित्र कर्मों के अनुष्ठान में वह सदा हमारा मार्गदर्शक है। सत्कर्मों के अनुष्ठान करने में रत मानव का वह निरन्तर मार्ग-दर्शन करता है और साथ ही उनको विशेष शक्ति और बल भी प्रदान करता है। वह प्यारा सखा दिव्य गुणों का महान् आगार है। सत्पथ के पथिक के अन्दर अपने दैवी गुणों का सञ्चार करने वाला है। वह कभी किसी प्राणी पर कहर (कोप) की वर्षा नहीं करता, अपितु सतत अमृत की ही वर्षा करना उसका स्वभाव है। अप्रशस्त कर्मों के अनुष्ठान से दीन दुःखी दरिद्री बने मानवों पर भी वह सदा अमृत की ही वर्षा करता है। उसके दण्ड-विधान में भी तो अमृत की परमपुट

विद्यमान रहती है।

अतः आओ! हम सब एक मात्र उसका ही वन्दन कर अपने जीवन को सफल बनावें। उसकी उपासना से ही हमारे अन्दर दैवी गुणों का सञ्चार होने वाला है और दुर्गुणों से हमारा निस्तार सम्भव है। उसका स्तवन वाह्य शब्दजाल से न करके हमें सच्चे हृदय से श्रद्धा समन्वित हो अपने अन्दर ही करना है, अपने मनमन्दिर में उसकी आराधना करनी है। पुनीत भावनाओं से किये गये आराधन, स्तवन वा वन्दन को वह प्रभु निश्चय सुनने वाला है।

३६

केतुं कृण्वन् अकेतवे।
पेशं मर्या अपेश से।
समुषद्भिः अजयथाः॥ ऋ० १-६-३

शब्दार्थ—(मर्या) मर्यादा का जीवन वा आत्मसंयम (अकेतवे) यश, प्रतिष्ठा वा मानशून्य व्यक्ति को (केतुं) यशस्वी सम्मानित (कृण्वन्) बना देता है (अपेशसे) दीन अकिञ्चन आभाहीन को (पेशं) अदीन तेजोमय बना देता है। (सं) सम्यक् प्रकार से (उषद्भिः) ऊषाकाल के सेवन द्वारा (अजायथाः) जीवन का विकास होता है।

भावार्थ—नियमित आहार-विहार एवं आत्म-संयम अर्थात् इन्द्रिय-निग्रह के सतत अभ्यास द्वारा साधारण मनुष्य यश प्रतिष्ठा एवं सम्मान का समाज में पात्र बन जाता है। समाज के निम्नस्तर का व्यक्ति भी ऊपर उठ जाता है। दीन, हीन, पतित वा दलित मानव भी समाज में समुचित मान प्राप्त करने लगता है। निज को हेय मानने ही भावना लुप्त होने लगती है और आत्मतेज जागृत हो उठता है।

अधिकारवाद की रट लगाने से पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष का जन्म होता और समाज का जीवन अशान्त बन जाता है और मानव का सही विकास भी रुक जाता है किन्तु इस कर्त्तव्य पालन द्वारा परस्पर में सौमनस्य का अभ्युदय

होता तथा समाज में शान्ति का विस्तार होता है।

ऊषा काल में जागना और आत्मतत्त्वका विवेचन करना तथा प्राणायामादिका अभ्यास करना मानव के उत्थान के, मानवता के सही विकास के सुन्दर साधन हैं। आत्मवान् बने बिना मानव व पशु में भेद भी क्या रहता है। पशुत्व से ऊपर उठना और दैवीवृत्तियों को जागृत करना मानव के जीवन की परम साधना है। अधिकारवाद के भ्रमजाल में लेशमात्र भी न फँसते हुए कर्त्तव्य पालन में रत होने में ही निश्चय मानव का और समाज का विकास हुआ करता है।

३९

गूहता गुह्यं तमो ।
वियात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्त्ता यदुश्मसि ॥ ऋ० १-८६-१०

शब्दार्थ—(गुह्यं तमः) गहरे अन्धकार को (आ गूहत) हमारे से सर्वथा तिरोहित करदो (विश्वं) सब (अत्रिणं) सद्गुणों को निगल जाने वाले अज्ञान को (वियात) दूर करदो (यदुश्मसि) जिसकी हम कामना करते हैं उस (ज्योतिः) प्रकाश को (कर्त्ता) करने हारे हो।

भावार्थ – जब प्राणायाम की साधना द्वारा प्राणशक्ति बलिष्ठ बना ली जाती है और अभ्यास द्वारा मन का निग्रह कर लिया जाता है तो हृदय-मन्दिर में जो गहरा अन्धकार छाया हुआ होता है वह दूर भागने लगता है। इस अन्धकार को दूर भगाने के लिये निश्चय ही मन का निग्रह करना नितान्त आवश्यक है। विषयों के बाह्य संसार में भटकते रहने से मन का निग्रह सम्भव नहीं अतः मानव को अन्तर्मुखी होना ही पड़ेगा और प्रतिदिन कुछ काल के लिये इन्द्रियों के व्यापार को रोकना ही पड़ेगा।

अन्दर का अज्ञानान्धकार सब दिव्य गुणों को निगल जाने वाला राक्षस है। इस राक्षस से हमें अपनी रक्षा करनी ही होगी। अपने अन्दर ज्ञान का

दीपक जलाए बिना मानव का कल्याण नहीं। अतः हमको इस दीपक को संजोने के लिये तेल और बाती की व्यवस्था करनी ही होगी। प्रणवपूर्वक सप्तव्याहृतियों का जाप और प्रत्याहार का अभ्यास ही यथार्थ तेल और बाती हैं। ज्ञान का दीपक जलाने में ही हमारा कल्याण निहित है अतः इस ध्रुव धारणा के साथ हमें ज्ञानी जनों का संग करना होगा और प्राणायाम के नियम पूर्वक अभ्यास द्वारा मनवा को वश में करना ही होगा। निश्चय तब अन्दर का अज्ञान दूर भगेगा और प्रकाश की ज्योतिः जगेगी। इस ज्योति को जगाना ही मानव की कामना और साधना है। प्रभो! हमें वह सद्बुद्धि प्रदान करो कि हम इस ज्ञान की ज्योतिः के जगाने में श्रद्धापूर्वक संलग्न हो जायें और अपने मानवीय जीवन को सफल बनावें।

२८

चोदयित्री सूनृतानाम्।
चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती॥ ऋ० १-३-११

शब्दार्थ—(सूनृतानां) उत्तम जीवन नृत्यों का (चोदयित्री) प्रबोध कराने वाली (सुमतीनां) श्रेष्ठ परिष्कृत बुद्धियों को (चेतन्ती) दिव्य चेतना से युक्त करने वाली (सरस्वती) पुनीत वाक् देवी (यज्ञं) यज्ञ को (दधे) धारण करती है।

भावार्थ—मनुष्य अपने जीवन में न जाने कितने नाच नाचता रहता है। किन्तु सबसे श्रेष्ठ नृत्य वह है जिसमें किसी मानव का और उसके सम्पर्क में आने वाले अन्य मानवों का अभ्युदय और विकास होता हो। ऐसे जीवन-नृत्यों का प्रबोध प्रभु की पवित्र वाणी वेद सदा कराती रहती है।

मानव की बुद्धि जिन साधनों से परिष्कृत होती है उनका भी बोध यह सरस्वती देवी (वेदवाणी) सदा कराती है और परिष्कृत बुद्धियों में दिव्य भावनाओं का उदय भी सरस्वती देवी की आराधना से ही होता है। जो मनुष्य श्रद्धा एवं ज्ञानपूर्वक वेदवाणी की शरण में जावेगा उसकी बुद्धि का

विकास और उसका दैवीकरण सुनिश्चित है। यह वेदवाणी ही सरस्वती है। इसकी एक-एक ऋचा में पवित्र ज्ञान का रस भरा हुआ है। वेदवाणी तो निश्चय ही जीवन-रस का सञ्चार करने वाली है। वेदवाणी यज्ञों का अर्थात् श्रेष्ठतम पवित्र कर्मों का विधान करने वाली है। पवित्र वैदिक ऋचाओं का भक्ति भाव पूर्वक उच्चारण यज्ञों की प्रतिष्ठा है। विना वेदपाठ के यज्ञ यज्ञ ही नहीं हैं। यज्ञों का धारण निश्चय यह सरस्वती पवित्र वेद की ऋचाएँ ही करती हैं। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के जीवन में यज्ञों का विकास इस सरस्वती देवी के द्वारा ही सिद्ध होता है।

३९

तद्विप्रासो विपन्यवः।
जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ यजु० ३४-४४

शब्दार्थ—(विष्णोः) विश्वव्यापक परमात्मदेव का (यत्) जो (परमं पदं) सर्व श्रेष्ठ एवं महान् प्राप्त करने योग्य स्थान मुक्तिधाम है (तत्) उसको (जागृवांसः) सदा जागरूक रहने वाले (विप्रासो) ज्ञान यज्ञ का सदा विस्तार करने वाले (विपन्यवः) भौगिक साधनाओं में रत मानव (समिन्धते) प्रकाश में लाते और प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे सर्वत्र कण-कण में रमे हुए विष्णु के सर्वश्रेष्ठ आनन्द से परिपूरित धाम को अर्थात् मुक्ति धाम को प्राप्त करने की क्षमता उन्हीं मानवों में होती है जो अध्यात्म ज्ञान के धनी होते और अपनी आन्तरिक शक्तियो का विकास करते हैं। जो नित्य प्रति योगाभ्यास कर मन का निग्रह करते और उसके द्वारा अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करते हैं। जो मानव सदा जागरूक रहते और कभी भी प्रमाद के वशीभूत नहीं होते और कर्त्तव्य पालन में सदा रत रहते हैं तथा सदैव विवेक से कार्य लेते और किसी भी कार्य में हाथ डालने से पूर्व उसके सम्बन्ध में यथोचित विचार करते हैं वह ही अन्तर्हित दिव्य ब्रह्माग्नि

को जागृत करने में समर्थ होते हैं। जिस प्रकार भौतिक अग्नि दो अरणियों के संघर्षण से प्रबुद्ध होती है उसी प्रकार मन को नीचे की अरणि और प्रणव को उत्तरारणि बनाकर भक्ति समन्वित जाप द्वारा ब्रह्माग्नि जागृत की जाती है।

तिलों में तेल, दीप में घृत, अरणियों में अग्नि की भान्ति ब्रह्म सर्वत्र ओत-प्रोत है और मन्थन द्वारा निश्चय ही उसका प्रादुर्भाव होता है।

४०

तद्विष्णोः परमं पदं ।
सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ऋ० १-२२-२०

शब्दार्थ—(विष्णोः) व्यापक परमात्मा का (तत्) वह (परमं) परम (पदं) प्राप्त करने योग्य धाम है। जिसको (सूरयः) पारदर्शी-जन (सदा) निरन्तर (पश्यन्ति) देखते रहते हैं (दिवि) आकाश में (आततम्) फैले हुए (चक्षुः) दर्शन के हेतु सूर्य की (इव) भान्ति।

भावार्थ—कण-कण में रमे हुए उस विश्व व्यापक परमात्मदेव का प्राप्त करने योग्य सर्वोत्तम स्थान वह मुक्ति धाम ही है जिसका बोध ज्ञानी जनों को होता रहता है। ज्ञानी जन उस मुक्ति-धाम की प्राप्ति की सदा प्राणपण से कामना किया करते हैं। अध्यात्मज्ञान के धनी मानव अर्थात् सूरी जनों के जीवन की साधना उस परम पद को प्राप्त करना और दीर्घ काल पर्यन्त आवागमन के चक्कर से बचकर प्रभु के उस दिव्य लोक में जहाँ आनन्द ही आनन्द सदा झरता रहता है निवास करना उनका परम अभीष्ट होता है।

दिव्य धाम में सिद्ध पुरुषों की आत्माएँ अपने कारण शरीरों से परमानन्द का मेल करती है। अबाधगति से ब्रह्मलोक में विचरण करती और कर्म-बन्धनों से मुक्त रहती हैं। जिस प्रकार आकाश में भौतिक सूर्य प्रत्यक्ष उदीयमान होता और दूर-दूर तक अपनी प्रकाश की किरणों का वितान तनता है और जिसके कारण हमारी आँखें संसार की वस्तुओं का दर्शन करने में

समर्थ होती उसी प्रकार वह दिव्य तेजो राशि विष्णु जिसके तेज से यह सूर्यादिक भौतिक तेज के पिण्ड प्रकाशित होते हैं साधना में रत भक्त के हृदय में प्रकाशित होता है और मुक्तावस्था में तो सर्वत्र वह दिव्य परम आनन्द-दायक तेज ही सर्वत्र भासित होता है।

इस दिव्य तेज की अनुभूति लेना मानव की एक पुनीत साधना है। जिस मानव ने अपने जीवन में इस दिव्य तेज की अनुभूति नहीं ली तो उसका इस संसार में आना और यहां से जाना कोई भी महत्त्व नहीं रखता।

४१

तत्सवितुर्वरेण्यम्।
भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ऋ० ३-६२-१० यजु० ३-३५
सा० ३-६-३-१७

शब्दार्थ—(तत्) उस (सवितुः देवस्य) दिव्य गुणों के भण्डार विश्वोत्पादक परमात्मदेव के (वरेण्यं भर्गः) वरण करने योग्य अर्थात् श्रेष्ठतम तेज का (धीमहि) हम सब ध्यान करें (यः) जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) पवित्र कर्मों के अनुष्ठान की ओर प्रेरित करे।

भावार्थ—ज्ञान योग द्वारा जिस प्रभु के अस्तित्व एवं महत्त्व की हमने अनुभूति ली है उस सकल जगत् के उत्पादक एवं जीवन शक्ति के दाता परमात्मदेव के अत्यन्त कमनीय धारण करने योग्य दिव्य तेज का हम अपने मनमन्दिर में ध्यान करें। अपनी धारणावर्ती बुद्धि द्वारा उसकी दिव्य अनिर्वचनीय ज्योतिः से हम अपनी लौ लगावें।

अपने-अन्दर बाहर ब्रह्माण्ड के कण-कण में उसकी व्यापक ज्योतिः की अनुभूति करने वाले हम बन जावें।

वह अहेतुक दयासिन्धु निश्चय ही हमारी बुद्धियों को कुकर्म से हटाकर

सनमार्ग की ओर प्रगति करने की प्रेरणा देने वाला है। हमारा यह दुर्भाग्य है कि हम उसकी प्रेरणा की परवाह नहीं करते और जानते हुए भी पाप-पंक से निकलना नहीं चाहते। अन्धकार में ही हम सुख की अनुभूति लेते और प्रकाश से मुंह छिपाने लगते हैं।

जिस दिन भी हम अपनी बुद्धि को सन्मार्गोन्मुखी बनाने का दृढ़ संकल्प धारण करेंगे प्रभु हमारे संकल्प की पूर्ति में निश्चय सहायता प्रदान करेंगे।

४२

तरणिर्विश्वदर्शतो।
ज्योतिष्कृदसि सूर्यः॥
विश्वमाभासि रोचनम्॥

ऋ० १-५०-४

शब्दार्थ—(सूर्यः) विश्व को प्रकाशित करने वाला परमात्मदेव आप (विश्वदर्शतः) दृश्यमान विश्व के (तरणिः) पार ले जाने वाली नौका के तुल्य है (ज्योतिष्कृदसि) प्रभो! आप विश्व को ज्योतिर्मय बनाने वाले हो (विश्वं) संसार की (रोचनं) अत्यन्त कमनीय (आभा) ज्योतिः (असि) हो।

भावार्थ—सकल संसार को उत्पन्न करने हारे और अपनी ज्ञान की ज्योतिः से उसको प्रकाशित करने हारे परमात्मदेव मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ नौका हैं। इस नौका में बैठकर यात्रा करने वाला मानव संसार में कभी किसी से वैर नहीं रखता और न कभी विनाश को प्राप्त होता है। अपितु अपने अभीष्ट को अर्थात् दिव्य आनन्द को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। योगी जन इस दिव्य सूर्य देव की उपासना द्वारा सकल ब्रह्माण्ड का ज्ञान उपलब्ध कर सकते हैं।

असंख्य लोक-लोकान्तरों का बोध योगी को उपलब्ध हो जाता है। साथ ही इस दृश्यमान विश्व के अन्दर छिपी हुई महती अनिर्वचनीय ज्योतिः एवं शक्ति का साक्षात् भी उसको सुगमता से हो जाता है। सारे विश्व की अत्यन्त

रमणीय वास्तविक आभाभी प्यारे प्रभो आप ही हो। विश्व के कण-कण में आपकी ज्योतिः समाई हुई है। आपकी ज्योतिः से ही सारा विश्व आभावान और कमनीय बना हुआ है। प्रभो! आपके आश्रय में रहकर हम विश्व की विभूति का साक्षात् करेंगे तथा उसका समुचित प्रयोग करेंगे और उसमें आसक्त न होते हुए आपके दर्शाए हुए मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सफल बनावेंगे।

४३

तरत् स मन्दी धावति।
धारा सुतस्यान्धसः॥
तरत् स मन्दी धावति॥

ऋ० ९-५८-१ सा० ५-६-१-२-४

शब्दार्थ—(मन्दी) भक्त, स्तोता, आत्मतृप्त (सः) वह मानव (सुतस्य) उत्पन्न की गई (अन्धसः) सोमयुक्त प्राण वा वाणी की (धारा) धारा के साथ (धावति) ऊपर वेग से उठता जाता है (स मन्दी) वह आनन्द तृप्त मानव (तरत्) निश्चय तर जाता है और (धावति) ऊर्ध्व गति बन ऊपर चढ़ जाता है।

भावार्थ—यह दुस्तर दीखने वाला संसार महासागर तरा जा सकता है और निश्चय तरा जा सकता है किन्तु इसको तर वही सकता है जो प्रभु का भक्त होता है और आत्मस्वरूप को जान लेता है। जो मानव आन्तरिक आनन्द से परिपूर्ण होता और संसार में निस्पृह होकर विचरता है बस वही इसे तर सकता है।

मन्दी बनने के लिये मानव को पूर्ण श्रद्धासमन्वित हो प्रभुस्तवन द्वारा अपनी प्रसुप्त शक्ति को जागृत करना होता है। यही शक्ति मन, प्राण और वाणी को उज्जीवित करती हुई ऊपर की ओर चढ़ने लगती है। इसी शक्ति-जागरण को कुण्डलिनी का जागरण कहा जाता है जिसके द्वारा प्राण की धारा मूलाधार से उठकर ऊपर चढ़ने लगती है, हैमवती शक्ति नाचती

कूदती हुई, भजन व स्तवन करती हुई मार्ग में प्राण, वाणी व मन के अद्भुत चमत्कार दिखाती हुई ऊपर अपने शिवरूप स्वामी की तरफ चढ़ने लगती है। यही मानसिक चेतना से युक्त प्राणधारा के रूप में क्रमशः ऊपर जाती हुई अनुभूत होती है। यही उत्पन्न किये हुए (अन्धस्) सोम की धारा है जिसके साथ-साथ आत्मा ऊंचा होता जाता है। इसी धारा के साथ भक्त ऊर्ध्वगति वाला बनता है।

प्रसिद्ध सप्तलोक मानव के अन्दर ही विराजमान हैं। उन्नत होता हुआ आत्मा इन सब लोकों को पार करता हुआ सत्यलोक में पहुँचकर पूर्ण स्वतन्त्र हो जाता है अर्थात् सर्वथा पार हो जाता है। सिर के सत्यलोक में प्राण, वाणी, मन आदि शक्तियाँ जाकर ठहर जाती हैं और शुद्धचित्त ज्ञान स्वरूप आत्मा को समाधि सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार प्रभु भक्त मन्दी दुःख सागर को तर जाता और निश्चय ही तर जाता है।

४४

तमध्वरेषु ईडते ।।
देवं मर्त्ता अमर्त्यम् ।।
यजिष्ठं मानुषे जने ।। ऋ० ५-१४-२

शब्दार्थ—(तं) उस (मानुषे जने) मननशील जनों में (यजिष्ठं) पूज्यतम (अमर्त्यं) शरीर आदि के बन्धन में न आने वाले निराकार (देवं) दिव्यगुण निधान ब्रह्म को (मर्त्ताः) शरीरादि के बन्धन में आने वाले मनुष्य (अध्वरेषु) यज्ञों में, हिंसाशून्य पुण्य कर्मों में (इडते) वन्दन करते हैं।

भावार्थ—संसार के समस्त मननशील मानवों का एकमात्र पूज्य, उपास्य, वन्दनीय एवं अर्चनीय देव वह परम ब्रह्म परमात्मा ही है। वह ब्रह्म निश्चय सर्व सद्गुणों का केन्द्र है। दैवी शक्ति, ज्ञान और क्रिया का निधान है। प्रकाशों का प्रकाश अर्थात् वह सूर्य आदि लोकों का प्रकाश है। उसी के तेज से संसार के सारे तेजोमय लोक अस्तित्व में आते

हैं। वह प्रभु अमर्त्य है। कभी शरीर, नस-नाड़ी के बन्धनों में आने वाला नहीं। नित्य, निरञ्जन, निराकार और निर्विकार है। वह तो बिना पगों के सर्वत्र गति करता, बिना कानों के सब कुछ श्रवण करता, बिन भुजाओं के संसार को रचता और धारण करता, बिना मुख के अपने सर्व सामर्थ्य द्वारा संसार के सकल पदार्थों के रसों को जानने वाला, बिना नेत्रों के संसार की प्रत्येक क्रिया को निरखने वाला और बिना वाणी के मानवों के हृदयों में सत्यज्ञान का उद्बोधन कराने वाला है। हिंसा शून्य परोपकारमय कर्मों के अनुष्ठान द्वारा ही उसकी वन्दना की जाती है। वह दयालु पिता शाब्दिक स्तोत्रों से प्रसन्न होने वाला नहीं। स्वार्थ भावना से शून्य यज्ञीय कर्मों अर्थात् परोपकार कर्मों द्वारा ही उसकी प्रसन्नता का सम्पादन सम्भव है।

४५

तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे।
स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः॥
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्॥ ऋ० १-७-७

शब्दार्थ—(वज्रिणः) पापों का वर्जन करने वाले (इन्द्रस्य) महान् शक्तिशाली परमात्मदेव के (तुञ्जे तुञ्जे) प्रत्येक दान व कृपा के सम्बन्ध में (ये) जो (उत्तरे) एक से एक बढ़कर (स्तोमाः) स्तुति वा महिमाएँ हैं (अस्य) इस दयालुदेव की (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति अथवा पूर्ण महिमा को (न विन्धे) मैं नहीं जानता।

भावार्थ—परमात्मदेव की शक्ति अद्भुत और अपार है। वह हम से पापों को दूर भगाने वाले एवं निरन्तर पापों से बचने की प्रेरणा देने वाले हैं। किन्तु हम अल्पज्ञ एवं अल्पशक्ति वाले जीव अपने पूर्व संस्कारों एवं कर्म करने की स्वतन्त्रता के कारण पापों की ओर आकृष्ट हो ही जाते हैं। वह औघड़ दानी असंख्य अन्न, जल, वायु, प्रकाश आदि पदार्थों का हम को दान करता है। उस अहेतुक दयासिन्धु की दया भी हम पर असीम है जिससे हम कभी ऋण नहीं हो सकते। हम लाख प्रयत्न करने पर भी उसके दानों की महिमा

का पूर्ण बखान नहीं कर सकते। उस प्यारे प्रभु की हम पर जो दया है उसका वर्णन करना भी हमारी शक्ति के बाहर है।

वह असंख्य हाथों द्वारा हम पर अपने दान की वृष्टि करता है हम निरन्तर उसकी दया के अथाह सागर में अवगाहन करते हैं। उसकी दया ही पर तो हमारी यह जीवन यात्रा चलती रहती है। हमारा प्रत्येक स्वांस और रोम भी यदि उसकी दया का बखान कर सकता हो तब भी वह थोड़ा होगा। उस इन्द्र के दानों की महिमा गाते-गाते हमारी वाणी थक जाती है और हम उसका पार नहीं पा सकते। तथापि हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम उसकी दया और दयानियों की महिमा का नित्य बखान कर अपने को कृतघ्नता के दोष से मुक्त रखें और उस जीवनशक्ति के दाता के प्रति कृतज्ञ बनें।

४६

तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसम्।
द्रविणस्युं द्रविणोदाः॥
सपर्येम सपर्यवः॥ ऋ० २-६-३

शब्दार्थ—हम (सपर्यवः) उपासक जन (तं) उस (गिर्वणसं) वाणी के अधिपति (त्वा) तुझको (गीर्भिः) अपने स्तोत्रों द्वारा (सपर्येम) वन्दन करते हैं। हम (द्रविणोदाः) द्रविण धनादि की भेंट चढ़ाने वाले (द्रविणस्युं) दिव्य आत्माहुति की कामना करने वाले तेरा बन्दन करते हैं।

भावार्थ—वह परमात्मदेव भौतिक वाणी से शून्य होते हुए भी वाणी के पति अपनी दैवी वाणी का मानव-हृदयों में संचार करने वाले हैं। प्रभो! हम अपनी सत्य से परिपूत वाणियों द्वारा आपकी वन्दना करते हैं। हम निश्चल हो निष्कपट भाव से आपकी अर्चना करते हैं। हम हर्ष और शोक में समृद्धि और संकटों में सतत आपका वन्दन करने वाले बन जांय बस यही हमारी कामना है। हम किसी अन्य दैवी शक्ति अथवा पदार्थ की अर्चना आपके स्थान पर भूलकर भी न करेंगे। किसी अन्य जड़ वा चेतन देवता को अपना

उपास्यदेव नहीं बनावेंगे। हम तो सदा अपने चरमोत्थान की कामना से आपकी उपासना कर दिव्य शक्ति एवं तेज का सम्पादन करेंगे। आप तो बल, विक्रम, तेज, ओज, वीर्य, मृत्यु एवं सहनशीलता के अतुलित भण्डार हैं अतः केवलमात्र आपकी उपासना द्वारा इनको प्राप्त कर आपकी आज्ञाओं का अपने को सफल वाहन बनाने में सतत प्रयत्नशील रहेंगे।

प्रभो ! आप द्रविणस्यु हैं अर्थात् आपकी यह कामना है कि आपके उपासक अपने जीवन में महान् त्याग एवं आत्म समर्पण करने वाले बनें। परोपकार के कार्यों में बड़े-से-बड़ा त्याग करने वाले और दूसरों की आग में जलने वाले परवाने बन जायें। अतः हम आपके उपासक निश्चय ही त्यागमय जीवन यापन करेंगे। परहित साधन ही हमारे जीवन की दिनचर्या होगी। हम अपनी सम्पत्ति और शक्ति संसार की भलाई में लगाने वाले बनेंगे। आपके दर्शाए पावन मार्ग से चलकर त्रिविध एषणाओं पर विजय पाते हुए आत्म-बलिदान करने के लिये सदा सन्नद्ध रहेंगे।

४७

त्वं च सोम नो वशो ।
जीवातुं न मरामहे ।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ऋ० १-९१-६

शब्दार्थ—(सोम) हे दिव्य गुण सम्पन्न महान् रक्षक प्रभो ! (त्वं च) तुम यदि (नः) हमारे (जीवातुं) जीवित रहने की (वशः) इच्छा करते हो (न मरामहे) तो हम मर नहीं सकते (प्रियस्तोत्रः) तुम तो निश्चय स्तवन करने वालों के प्रिय एवं (वनस्पतिः) ज्ञानी उपासकों के पालनहार हो।

भावार्थ—हे दिव्य गुणों के परमनिधान असंख्य रक्षा के साधनों से संयुक्त प्रभो ! जिसके तुम रखवारे हो उसका संसार में कोई विनाश कर नहीं सकता। अगाध सागर की लहरों में, वह्नि की ज्वालाओं में, शत्रु के भीषण प्रहारों में भी तुम सदा उसकी रक्षा करते हो जिसको तुम जीवित रखना

चाहते हो और तुम्हारे न्याय नियम के अनुसार जिनकी जीवन अवधि समाप्त हो गई है उनको संसार की कोई शक्ति बचा नहीं सकती। प्रभो! तुम ही दीन-दुःखी, निर्बल और अनाथों के नाथ हो। तुम ही भवसागर में डूबते हुए को उभारने वाले हो। निराशा में आशा का दीप जलाने वाले और निबिड़ अन्धकार में तुम ही एकमात्र हमारे प्रकाश-स्तम्भ हो। जिस समय हमें कोई मार्ग नहीं दीखता और मानस क्षितिज पर अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ होता है तो तुम ही दिव्य प्रकाश की विद्युत् हमारे आत्मा में कौंधाते हो।

प्रभो! आप प्रियस्तोत्र हो अर्थात् सच्चे हृदय से गाए हुए स्तोत्रों को अपनाने वाले हो। हम गायकों के सच्ची भक्ति से संयुक्त गीतों को आप निश्चय सुनने वाले हो। नाथ! आप वनस्पति हो अर्थात् ज्ञान एवं भक्ति योग के साधक अपने उपासकों की प्रार्थनाओं को आप निश्चय श्रवण करने वाले और नानाविधि उनका पालन करने वाले हो। प्रभो! ऐसी कृपा करो कि हम अपना जीवन आपकी आज्ञाओं के पालन करने के हेतु समर्पित करने वाले बन जायें। हमारा गान आपकी महिमा का सुन्दर संगीत हो। प्रभो! हमारे अन्दर पावन जीवन रस का सञ्चार कर दो और हमारे जीवनों को पावनी आध्यात्मिक मादकता से भरभूर कर दो।

४८

त्वं नः सोम विश्वतो।
रक्षा राजन्नऽघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा।। ऋ० १-९१-८

शब्दार्थ—(राजन्) प्रकाशित होने वाले (सोम) मानव जीवन में दिव्य—मादकता संचारक (त्वं) तू (नः) हमारी (विश्वतः) सर्व दिशाओं से (अघायतः) पाप करने वालों से (आ रक्ष) सर्व विधि रक्षा कर (त्वा) तुझ (सखा) मित्र द्वारा (अवतः) रक्षित (न) (रिष्येत्) पतित होता है।

भावार्थ—मनमन्दिर में प्रकाशित होने वाले और जीवन में

मादकता का सञ्चार करने वाले प्यारे प्रभो! आप हर बाधा से हमारी रक्षा करने वाले हो। भयंकर आपत्तियों और संकटों में हमें एकमात्र आपका ही सहारा है। जब संसार में निबिड़ अन्धकार छाया हुआ हो और हमें कोई मार्ग दिखलाई न देता हो तो केवल आप ही हैं जो हमारा मार्ग दर्शन करते हैं, हमें सही मार्ग का बोध कराते हैं। जब भयंकर विनाश हमारे सामने उपस्थित होता और संसार में कोई हमारा सहायक नहीं होता तो आप अपनी असंख्य रक्षा करने वाली भुजाओं से हमारी रक्षा करते और संकटों के अथाह सागर से हमें उभारते हो।

जब नाना प्रकार की पाप प्रवृत्तियाँ हमें आकर घेर लेती हैं और हम अज्ञानवश उन पापों में रत होने लगते हैं तो आप ही हमारे अन्दर बैठे हुए हमें उन प्रवृत्तियों से बचने की प्रेरणा देते और सन्मार्ग से चलने के निमित्त हमारे अन्दर बल का सञ्चार करते हो। आप ही हमारे सच्चे मित्र, सखा और साथी हो। आप तो सखा भी ऐसे हो कि जिसका कभी बिछोहा नहीं होता। हम अज्ञान से अंधे होकर भले ही आपको भूल जावें किन्तु आप हमको कभी नहीं बिसराते। जिसने आप जैसे परम मीत को पहचान लिया और आप से अपना सच्चा नाता जोड़ लिया निश्चय ही वह कभी पतन के गर्त में नहीं गिरता अपितु निरन्तर प्रगति पथ पर आरूढ़ रहकर आगे-ही-आगे बढ़ता चला जाता है। मैं तो अपने जीवन में उसी दिन की, उस पावन क्षण की बाट जोह रहा हूँ कि जब आपके पवित्र नाम का स्मरण करते ही मेरा शरीर रोमांचित हो उठे और प्रेमाश्रुओं की अजस्र धारा मेरे नेत्रों से प्रवाहित होने लगे और आपका प्रेम मुझे दिव्य मादकता से सराबोर कर देवे।

४६

त्वं सोमासि सत्पतिः।
त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ऋ० १।९१।५

शब्दार्थ—(सोम) जीवनाधार प्रभो (त्वं) तुम (सत्पतिः) सर्वश्रेष्ठ पालन हार (असि) हो (उत त्वं) और तुम (वृत्रह) पाप रूपी

मेधा के संहारकर्त्ता (राजा) दिव्य गुणों को प्रकाशित करने हारे हो (त्वं) तुम (भद्रः) कल्याणकारी (क्रतुः) यज्ञरूप (असि) हो।

भावार्थ—हे परम प्रिय प्राणाधार प्रभो! हमारे जीवन को सरसाने वाले आप परम पावन मादकतत्व हो। आपकी इस मादकता में सराबोर होकर मैं अनिर्वचनीय आन्तरिक सुख को प्राप्त होता हूँ। आप हमारे सर्व-श्रेष्ठ पालनहार हो। आप असंख्य हाथों से सदा हमारी रक्षा करते हो। हम स्वभाव से अल्पज्ञ हैं, नाना प्रकार के पाप हमारे निकट मंडलाते रहते हैं। यह पाप रूप मेघ हमारे चहुँ ओर अन्धकार का वितान तनते रहते और दिव्य प्रकाश को हमारे पास पहुँचने नहीं देते।

प्रभो! आप ही इन पापों को विदीर्ण कर हमें पावन प्रकाश पथ का पथिक बनाने वाले हो। हमारे हृदय मन्दिर में दिव्य ज्योतिः को प्रकाशित करने हारे आप ही हो।

आप अहेतुक दयासिन्धु हो! निरन्तर प्राणियों का कल्याण करना आपका सनातन व्रत है। आपकी दण्ड व्यवस्था मे भी प्राणियों का कल्याण और एक-मात्र कल्याण ही अभीष्ट होता है। आप निरन्तर कल्याणकारी कर्मों के अनुष्ठान की पुनीत प्रेरणा देकर हमारा निस्तार करने वाले हो। प्रभो! आप क्रतु हो। पावन पुनीत यज्ञरूप हो। प्राणीमात्र का उपकार करना आपका सहज स्वभाव है। आपने तो हमारे ऊपर असंख्य उपकार किये हैं जिनकी गणना करना हम मानवों की शक्ति के बाहर है।

५०

त्वं हि विश्वतो मुखः।
विश्वतः परिभूरसि॥
अप नः शोशुचदघम्॥। ऋ० १। ७५। ६

शब्दार्थ—प्रभो! (त्वं) आप (हि) निश्चय करके (विश्वतः) सब ओर (मुखः) मुख वाले हो (विश्वतः) सब ओर (परिभूः) व्यापक (असि) हो (अघं) पापियों को (नः) हमसे (अप) दूर करो

तथा (शोशुचत्) शोक सन्तप्त करो ।

भावार्थ—संसार की कोई वस्तु उस प्रभु से ओझल नहीं । जीवात्माओं के कार्य और उनकी मनोभावनाएँ भी उस प्यारे प्रभु से छिपी नहीं क्योंकि वह तो विश्वतोमुखः अर्थात् सर्वानन सहस्रशीर्ष और सहस्राक्ष है । उससे कोई भी स्थान शून्य नहीं । सूक्ष्मतम होने से प्रकृति के अणुओं परमाणुओं का तो कहना ही क्या वह जीवात्माओं के अन्दर भी समाया हुवा है । पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर-नीचे सर्वत्र एकरस निज सत्ता से विद्यमान है ।

पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकों में सर्वत्र वह हमारा प्यारा प्रभु रमा हुआ है । निश्चय वह पाप वासनाओं से दूर रहने की हमें सतत प्रेरणा देने हारा है । वह स्वयं अपापविद्ध है और अपनी सनातन प्रजा को पापों से दूर रहने की प्रेरणा उपदेश एवं आदेश देने वाला है । हम पापों से बचने की शक्ति की उससे याचना करें और संकल्पपूर्वक पापों और पापियों से दूर रहें । पापियों के साथ सम्पर्क बनाकर हम कभी अपना पतन न करें । हम कभी भूलकर भी पाप और पापियों का समर्थन करने वाले न होवें । पापियों से हमारा सदा असहयोग रहे और उनको अकेले में पश्चात्ताप करने और अपना सुधार करने का अवसर मिले । पापियों के साथ हमारा सहयोग जहाँ हमारे पतन का कारण होगा वहाँ उनको भी पाप करने में सहारा देने वाला होगा । अतः प्रभो ! हमें बल दो कि हम इस असहयोग द्वारा अपना और उनका उद्धार कर सकें ।

५१

त्वयेदिन्द्र युजा वयं ।
प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः ।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ऋ० ८ । ९२ । ३२

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो ! (त्वया) आपसे (इत्) निश्चय करके (युजा) मेल करते हुए (वयं) हम उपासक लोग (स्पृधः) कामना करते हुए (प्रति ब्रुवीमहि) अन्तस्तल से यह घोषणा

करते हैं कि (त्वं) केवल आपही (अस्माकं) हमारे उपास्य देव हो और (तव) आपके हम (स्मसि) उपासक हैं।

भावार्थ—हे सकल विश्व के सृजनहार परम ज्ञान शक्ति एवं क्रिया के केन्द्र प्रभो! हम अपने जीवन में सतत यही प्रयत्न करेंगे कि आपसे कभी विमुख न हों और सदा आपकी छाया [आश्रय] में ही विकास करें। आपकी छाया तो हमारे लिये अमृत है। वह हमें सदा गिरावट से बचाने वाली और उन्नति के शिखर पर पहुँचाने वाली है।

हम केवल शब्दों द्वारा आपकी कामना करने वाले न रह कर अन्तस्तल से आपके दिव्य दर्शन के अभिलाषी बनें और आपके सामीप्य [कुर्व] को प्राप्त करने का सदा प्रयत्न करने वाले बनें। हम केवल शाब्दिक आपका आवाहन न कर श्रद्धा समन्वित हो सच्चे हृदय से आपका अपने अन्दर आवाहन करने वाले बन जायें और आप जो अन्दर पर्दे में छिपे बैठे हो गद्गद होकर दर्शन देने की आपसे प्रार्थना करने वाले बन जायें।

आप हमारे परम रक्षक, हितु, माता, पिता, बन्धु, सखा और साथी हो। हमारी जीवन नैय्या के एक मात्र खेवनहार और संसार सागर से तरने की दिव्य शक्ति के दातार हो।

बस आप ही एकमात्र हमारे उपास्य देव हो। आपसे भिन्न किसी जड़ वा चेतन वस्तु को हम अपना उपास्य देव कभी भूलकर भी नहीं बनाने वाले हैं। आप ही हमारे मनमन्दिर के एकमात्र देवता हो। आप ही की पूजा-अर्चना, वन्दना, स्तुति और उपासना हम सदा करेंगे।

प्रभो! हम आपके हैं और केवल आपके ही हैं। आपका ही और केवल आपका ही हमको सहारा है। हम आपकी शरण में उपस्थित हैं। नाथ! हम शरणागतों की रक्षा करो और हमारा उद्धार करो।

५२

त्वामग्ने मनीषिणः।
त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः॥
त्वां वर्धन्त नो गिरा॥॥ ऋ० ८।४४।१९

शब्दार्थ—(अग्ने) ज्यतिः स्वरूप प्रभो! (मनीषिणः) मननशील

ज्ञानी जन (चित्तिभिः) ध्यान योग द्वारा (त्वां) तुमको (हिन्वन्ति) प्राप्त होते हैं (नः) अपनी (गिरा) वाणी के द्वारा (त्वां) तुमको (वर्धन्त) बढ़ाते हैं।

भावार्थ—हे विश्वनियन्ता, ज्ञान के अद्वितीय केन्द्र प्रकाशपूर्ण प्रभो! यौगिक साधनाओं द्वारा मन को स्थिर करने वाले और गम्भीर चिन्तन मनन द्वारा आपके वास्तविक स्वरूप की अनुभूति लेने वाले तपस्वी मानव ही आपको प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। संसार के मिथ्या वादों में फंस कर और सस्ती मुक्ति के प्रलोभनों, नाना तीर्थ अटनों और शब्दिक नाम जपनद्वारा जो आपको पाना चाहते हैं वह कभी सफलता लाभ नहीं कर पाते। सत्य में अनन्य प्रीति जागृत किये विना सच्चिदानन्द प्रभु को प्राप्त करना सम्भव नहीं। मतान्धता और अन्धविश्वास मानव को सत्य के दर्शन से दूर भगा देते हैं। पक्षपात शून्य होकर विवेक से काम लेने वाला मानव ही उस सत्य स्वरूप स्वामी का दर्शन कर सकता है।

वेदवाणी के प्रकाश में पवित्र की हुई अपनी गिरा द्वारा अपने स्तोत्र, स्तवन और स्तुतियों द्वारा मनस्वी मानव आपकी महिमा का जगती तल पर प्रकाश करते, उसका विकास करते, संसार के भूले-भटके जनों का पथप्रदर्शन करते हैं। अब्रह्म में ब्रह्म की भ्रान्त भावना का निराकरण कर उनको ब्राह्मी स्थितिका रसास्वादन कराते तथा कण-कण में समाई हुई आपकी दिव्य सत्ता का बोध कराते हैं। यह सारा संसार ब्रह्ममय है, ब्रह्म से ओत-प्रोत है, ब्रह्म में समाया हुआ है ऐसा बोधकरा कर अनीति, अनाचार से, अन्याय, अत्याचार से जनता को उभार कर संसार में दैवी साम्राज्य (Kingdom of God) का विस्तार करते हैं।

५३

देवस्य चेततो महोम्।
प्रसवितुर्हवामहे।
सुमतिं सत्यराधसम्॥ यजु० २२। ११

शब्दार्थ—(चेततः) आत्मचेतना का विस्तार करने वाले (सवितुः) जगत् स्रष्टा की (देवस्य) दिव्य गुणों के निधान की (सत्यराधसम्)

सत्य रूप सम्पत्ति का दान करने वाली (महीं) महती (सुमतिं) सौमनस्यता का (प्रहवामहे) विशेष रूप से हम आवाहन करते हैं।

भावार्थ अनन्त दिव्य शक्तियों के भण्डार, सम्यक् सार युक्त इस संसृति के निर्माता और मानव मात्र की आत्माओं में निरन्तर दैवी चेतना उतवा प्रेरणा के दाता परमात्मदेव के सान्निध्य को उपलब्ध करना ही मानव-जीवन की साधना है।

उस प्रभु की यह प्रेरणा मानव में सौमनस्यता का संचार करने वाली, मानव को सत्पथ का दर्शन कराने वाली है। तथा सत्य रूपी सम्पत्ति का अतुलित भण्डार उसके लिये प्रदान करने वाली है। यह सत्यरूपा सम्पत्ति ही मानव का अत्यन्त हित सम्पादन करती और उसको परम सुख प्रदान करने वाली है। सत्यरूपा सम्पत्ति से सम्पन्न मानव अपने जीवन में संसार का अधिक-से-अधिक हित सम्पादन करता, संसार के हित में अपना हित देखता और समष्टि की मुक्ति में अपनी मुक्ति का दर्शन करता है।

सत्य में महती प्रीति जागृत करने वाला अर्थात् श्रद्धा की साधना में रत रहने वाला मानव भौतिक सम्पत्ति को पाकर भी कभी पथभ्रष्ट नहीं होता अपितु उस भौतिक ऐश्वर्य के भाल पर भी श्रद्धा का ही आवाहन करता और जीवन मुक्ति अथवा विदेहत्व को प्राप्त कर लेता है।

हम उस प्रभु की इस दिव्य सुमति को अर्थात् दिव्य अनुकम्पा एवं आशिष को प्राप्त करने का सतत प्रयत्न करने वाले बन जायें।

५४

देवं नरः सवितारं।
विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः॥
नमस्यन्ति धियेषिताः॥ ऋ० ३। ६२। १२

शब्दार्थ—(धियेषिताः) प्रगल्भ बुद्धि वाले (विप्राः) प्रौढ़ ज्ञानी (नरः) श्रेष्ठ मानव (सुवृक्तिभिः) ध्यान आदि यौगिक क्रियाओं द्वारा तथा (यज्ञैः) उत्तम परोपकार कर्मों द्वारा (देवं) दिव्य ज्ञान

एवं प्रकाश युक्त (सवितारं) संसार के रचयिता को (नमस्यन्ति) नमन करते हैं।

भावार्थ—संसार के मनुष्य उस प्रभु की नाना प्रकार से और नाना भाषाओं द्वारा स्तुति, प्रार्थना, अर्चना व वन्दना करते हैं। विभिन्न भाषाओं में उच्चरित स्तोत्रों के अन्दर जो भावनाएं अन्तर्हित होती हैं प्रभु उनको निश्चय लक्ष करते हैं। प्रौढ़ ज्ञानी परोपकारी ब्राह्मण संन्यासी साधना रत प्रगल्भ बुद्धि वाले श्रेष्ठ मानवों की भावनाएँ चाहे वह मानव पठित हों या अपठित, धनी हों या निर्धन, ऊँच हों वा नीच उस प्रभु को विशेष प्यारी लगती है। स्वार्थी, दम्भी प्रमादी जन चाहे वह कितने भी पढ़े हों धनी वा पदारूढ़ हों उनकी भावनाएँ पतित और निकृष्ट होने से उस प्रभु को कभी भी प्रिय नहीं होतीं।

श्रेष्ठ मानव धारणा ध्यान आदि यौगिक साधनाओं द्वारा तथा अपने पवित्र परोपकारादि कर्मों द्वारा अर्थात् त्याग एवं बलिदानों द्वारा तथा निष्काम भाव से की गई दीन दुखी दरिद्री और दलितों की सेवाओं द्वारा उस प्रभु का अर्चन करते हैं। स्तोत्र पाठ की अपेक्षा परोपकार के कार्य तथा दूसरों के हित में स्वदेश, स्वराष्ट्र, स्वजगति एवं स्वसंस्कृति आदि की रक्षा निमित्त किये गये त्याग व बलिदान प्रभु को प्यारे हैं। शाब्दिक स्तोत्रों वा प्रार्थनाओं को प्रभु कभी नहीं सुनते। स्वार्थी व्यक्तियों की स्तुतियां प्रभु के पास कदापि पहुँचने वाली नहीं।

संसार के सारे ईश्वर पूजा के विधान निरर्थक हैं यदि पुजारियों के हृदय परोपकार की वृत्तियों से ओतप्रोत नहीं। दम्भ, द्वेष, प्रमाद के शिकारी पुजारी वास्तव में उस प्रभु की सच्ची पूजा के अरि अर्थात् शत्रु मात्र ही हैं।

नमस्ते अग्न ओजसे ।
गृणन्ति देव कृष्टयः ।
अमैरमित्रमर्दय ॥ साम० १ । ४ । १

शब्दार्थ—(ओजसे) जीवनाधार (अग्ने) ज्योतिः एवं प्रकाश के पुञ्ज प्रभो! (ते) आपको (नमः) सादर वन्दन है (देव) दिव्य गुणागार प्रभो! (कृष्टयः) कर्मशील मानव (गृणन्ति) आपका यशोगान करते हैं (अमित्रं) विनाश करने वाले को (अमैः) तीव्र दण्ड द्वारा (अर्दय) दण्डित कर दो, हमें दण्डित करने की शक्ति से युक्त कर दो।

भावार्थ—परमात्मदेव जीवनशक्ति के दातार हैं। दिव्य गुणों के केन्द्र हैं और सत्पथ पर प्रगति करने की सदा हमको प्रेरणा देने हारे हैं। हम श्रद्धा-भक्ति से समन्वित हो सदा अपने मनमन्दिर में उनका अर्चन, वन्दन एवं स्तवन करने वाले बन जायें। दिव्य देव की उपासना द्वारा अपने अन्दर दिव्य गुणों व शक्तियों का आधान कर और अपनी सुषुप्त आन्तरिक शक्तियों को जागृत कर हम प्रबुद्ध आत्मा [Awakened Soul] बन जायें। संसार के सब उद्यमी एवं पुरुषार्थी मानव कर्मयोग की साधना द्वारा उस महान् दिव्य देव के गुणों का अनवरत बखान करते और सच्चे हृदय से उसकी महिमा के गीत गाकर अपने जीवन को उन्नत और पवित्र बनाते हैं। वह दयालु देव निश्चय ही हमारे दुर्गुणों का नाश करने वाले हैं और दुष्टों से सदा दूर रहने की प्रेरणा देने वाले हैं। दुष्टों को दण्ड देने के उसके साधन असीम और अनन्त हैं। वह अपनी सहज शक्तियों से बड़े-से-बड़े अत्याचारी का क्षण भर में विनाश कर सकते हैं।

प्रभो! जो प्राणी मानवता का संहार करते और अकारण ही संसार को विनाश के गर्त में धकेलने वाले हैं उनको दण्डित करो और सत्पथ पर चलने वाले अपने भक्तों के हृदयों में अन्याय, अत्याचार अनीति और अनाचार से लोहा लेने की शक्ति का संचार कर दो।

नामानि ते शतक्रतो ।
विश्वाभिः गीर्भिः ईमहे ।
इन्द्र अभिमातिषाह्ये ।। ऋ० ३-३७-३

शब्दार्थ—(शतक्रतो) असंख्य दिव्य कर्मों के केन्द्र परमात्मदेव ! (ते) तुम्हारे (नामामि) असंख्य गुण बोधक नाम हैं। (विश्वाभिः) अपनी सर्व (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (ईमहे) मैं उनकी कामना करता हूँ (इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त स्वामिन् (अभिमातिषाह्ये) अभिमान-रूप शत्रु का पराभव करने के लिये मैं आपकी सहायता की याचना करता हूँ।

भावार्थ—परमात्मदेव आप शतक्रतु हैं अर्थात् सृष्टि रचनादि अनन्त दिव्य कर्मों के कर्त्ता और जीवों के कल्याणार्थ इस संसाररूपी यज्ञ के रचयिता आप ही हैं।

आपके गुणों का बोध कराने वाले नाम असंख्य हैं। हम आपके गुणों का पार पा नहीं सकते, अतः आपके नामों का भी पार पाना हमारे सामर्थ्य से बाहर है।

हम सब आपके अमृतपुत्र अपनी विभिन्न वाणियों द्वारा तथा अपने विभिन्न स्तोत्रों द्वारा आपके ही पवित्र यश का बखान करने वाले हैं। हम अपने सर्व संगीतों द्वारा आपके पावन नामों का ही कीर्तन करने वाले बन जायँ, बस यही हमारी कामना है।

प्रभो ! आप परमैश्वर्यशाली हैं। यह सारा संसार आपकी ही विभूति है। आपकी शक्तियाँ भी अनन्त हैं, उनका माप करना हमारे ज्ञान से बाहर है। आपकी इन शक्तियों का प्रसार सारे विश्व में व्याप रहा है। प्रभो ! आप सर्वदृक् एवं सर्वत्र गति वाले हैं।

कण-कण और रोम-रोम में रमने वाले स्वामिन् ! हमें अपनी दया और कृपा का पात्र बना लो। हमें सत्पथ का पथिक बनाकर निज जीवन को सफल बनाने की क्षमता से हमें युक्त कर दो।

निषसाद धृतव्रतो।
वरुणः पस्त्यास्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः॥ ऋ० १-२५-१०

शब्दार्थ—(धृतव्रतः) व्रतों को धारण करने वाला (सुक्रतुः) श्रेष्ठ यज्ञीय कर्मों का सदा अनुष्ठान करने वाला (वरुणः) अत्यन्त स्पृहणीय परमात्मदेव (स्वा) हमारे (पस्त्या) गृह में (साम्राज्याय) आध्यात्मिक शासन की स्थापना के निमित्त (निषसाद) विशेष रूप से विराजमान है।

भावार्थ—संसार में मानव के लिये सबसे प्यारी वस्तु यथार्थ में धन, कलत्र आदि नहीं अपितु वह प्राणप्यारा प्रभु है जो कि सर्वश्रेष्ठ व्रतों का धारण एवं उनको पूरा कराने वाला है। उस प्रभु ने प्राणीमात्र के लिये यह संसार रूपी महान् यज्ञ रचा है। उसके इस यज्ञ का धूम्र प्राणीमात्र को आवासित करने वाला और हृदयतन्त्री को झंकृत करने वाला है। अभागे हैं वह जन जो असंख्य तारों-नक्षत्रों से परिपूर्ण इस आकाश को, वन पर्वत सरिता और सागरों को निरख कर भी श्रद्धा और प्रेम के मादक रस का पान नहीं करते।

वह प्यारा प्रभु हमारी इस अष्टचक्रा नवद्वारा पुरी का निर्माता है। कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का रचयिता है और हमारे इस शरीर रूपी गह के भीतर के परकोटे में हमारा सखा बनकर विराजमान है।

वह सदा ही सुन्दर कल्याणकारी सलाह देता रहता है और आध्यात्मिक शक्तियों के विकास की पावन प्रेरणा देने में सतत निरत रहता है। हमारे अन्दर और बाहर आध्यात्मिक स्वराज्य की स्थापना हो, भौतिकता का प्रभाव हमारे ऊपर जमने न पाए। हम अपने कर्म स्वातन्त्र्य को सुरक्षित रखते हुए अपने चहुँ ओर आध्यात्मिक स्वराज्य की स्थापना करें और विश्व में परम सुखकारक दिव्य आध्यात्मिक साम्राज्य की स्थापना में सब मिलकर प्रयत्न करने वाले बन जायँ।

परिस्वानो गिरिष्ठाः ।
पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ।। साम० ५-१०-३

शब्दार्थ—(गिरिष्ठाः) पर्वतों, मेघों और ऋषियों की वाणियों में विद्यमान (सोमः) संजीवन रस (परिस्वानः) चारों ओर से शब्द करता हुआ (पवित्रे) हृदय की छलनी में (अक्षरत्) टपकता है और (मदेषु) नशों में (सर्वधा) सब प्रकार (असि) आबोर करने वाला है।

भावार्थ—प्रभो! मैं तुम्हारी लीला को देखता हूँ। जबसे तुमने मेरे हृदय को अपने ज्ञान की उषा का उदयाचल बनाया है, जब से मेरे नेत्र तुम्हारी करुण कृपाओं के मेघ बन रहे हैं तब से मैं पर्वत-विलास, मेघ-विलास, ऋषि-हृदय-विलास के प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ। मेरे हृदय में भक्ति के स्रोत बह निकले हैं। झरने झर रहे हैं। नदियाँ बह निकली हैं। एक विचित्र हरियाली छा गई है। मेरा तो रोम-रोम झूम रहा है।

मैं अपने हृदय की बात क्या कहूँ! यहाँ तो सारा ब्रह्माण्ड ही एक विचित्र प्रकार के राग रंग और नृत्य का क्रीडाक्षेत्र बन गया है। प्रत्येक सौर-मण्डल के अधिष्ठाता सूर्य आदि अपनी-अपनी परिधियों पर घूम रहे हैं। बृहस्पति मंगलादि ग्रह अपनी-अपनी परिधि पर नृत्य करते हुए सूर्यादि की परिक्रमा में संलग्न हैं। चन्द्रादि उपग्रह भी इन ग्रहों को रिझाने में अलग ही होड़ लगा रहे हैं। मुझे तो अणु-अणु घूमता नजर आ रहा है। लता बेल वितानों में, छव पादप और वृक्षों में, नृत्य, ताल और संगीत की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही है। इनका पत्ता-पत्ता झूम रहा है। सबने प्रेमरस रूपी सोम का पान कर रखा है। सम्पूर्ण विश्व नशे में चूर हुआ झूम रहा है।

इन मस्तानों में मेरा हृदय भी मस्ताना हो उठे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है! यह सारा संसार ही जब मस्ती का घर बना हुआ है तो मैं मस्ती से शून्य रहूं यह कैसे सम्भव हो सकता है!

मैं तेरे इस दिव्य मधुर मद का पान कर मस्ताना बनूंगा। मस्तानों की दुनियाँ में झूम-झूम कर मस्ती के गीत गाऊँगा।

पवस्व देव आयुषक् ।
इन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमारोह धर्मणा ॥ साम० ५-१०-७

शब्दार्थ—हे (आयुषक्) दिव्य जीवन के दाता (देव) दिव्य ज्ञान और प्रकाश के केन्द्र (पवस्व) हमें पवित्र बना दो (ते) आपकी (मदः) मस्ती (इन्द्रं) दिव्य ऐश्वर्य आनन्द को (गच्छतु) प्राप्त करावे (धर्मणा) अपने सहज स्वभाव से हमको (वायुं) प्रगतिशील पापनाशक गुणग्राही एवं अवगुणों से बचने वाला (आरोह) वना दो।

भावार्थ—हे दिव्य जीवन के दातार प्रभो! हमारे जीवन में पवित्रता सरसा दो। हम पाप-प्रवृत्तियों एवं वासनाओं से वचकर पुण्य प्रवृत्तियों एवं दिव्य भावनाओं से युक्त वन जावें। आपकी उपासना से उपलब्ध आध्यात्मिक मद अर्थात् वहदानियत की मस्ती हमें दिव्य ऐश्वर्य की ओर, दिव्य सुख और आनन्द की ओर प्रगति करने वाला वना दे।

आपकी भक्ति से उत्पन्न हुआ रस अर्थात् सरूर हमें मस्ताना बना दे और हमें उस आनन्द को जिसका वाणी से बखान नहीं किया जा सकता, प्राप्त करने की क्षमता प्रदान कर दे।

प्रभो! आपका तो धर्म अर्थात् सहज स्वभाव ही प्राणियों का उद्धार करना है। मानवों को प्रगति-पथ का आप सदा निर्देश करते हैं। अतः हम आपके उपासक दिव्य आध्यात्मिक उन्नति की ओर दृढ़तापूर्वक चलने वाले बन जायें। प्रभो! आप अपापविद्ध हो, हम भी पापों से घृणा करने वाले और इनसे सदा दूर रहने वाले बन जायें। हम आपकी उपासना द्वारा अपनी पाप-प्रवृत्तियों को भस्म करने वाले बन जायें।

प्रभो! आप गुणों के भण्डार हैं, हम आपके उपासक भी क्यों न गुणों के धारण करने वाले बन जायें। हमारा जीवन आपके दिव्य गुणों से प्रभावित हो उठे और हम अवगुणों से सदा दूर रहने वाले बन जायें। प्राणायामादि के अभ्यास द्वारा मन का निग्रह करते हुए हम ध्यान-योग द्वारा आपका सान्निध्य प्राप्त कर दिव्य जीवन रस का पान करने वाले बन जायें।

६०

पवस्वेन्दो वृषासुतः ।
कृधि नो यशसो जने ।
विश्वा अपद्विषो जहि ।। साम० ५-१०-३

शब्दार्थ—(इन्दो) परम आनन्द प्रदाता प्रभो ! आप (वृषासुतः) आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न मानवों द्वारा मन्थन किये जाने वाले हैं (पवस्व) आनन्दयुक्त कर दो। (जने) जन समाज के बीच (नः) हमको (यशसः) यशस्वी (कृधि) बनाइये (विश्वा, समस्त (द्विषा) द्वेषभावनाओं को हमारे बीच से (अपजहि) दूर हटाइये।

भावार्थ—परमात्मदेव सदा आनन्द-वारि की वर्षा करने वाले हैं। आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न मानव ही ध्यान योग द्वारा अपने अन्दर मन्थन कर इस अमृत रस को निष्पन्न करते हैं। यह आनन्द रस सदा हमारी रक्षा करता और हमें प्रगति पथ का पथिक बनाता है। इस दिव्य आनन्द-रस को पाकर हम सर्व प्रकार की कुटिलताओं से मुक्त हो जाते और पवित्रतम भावनाओं से परिपूरित हो जाते हैं।

आध्यात्मिक शक्तियुक्त मानव न चाहते हुए भी जनता में यश का भागी बन जाता है। आनन्द-रस का पान करने वाला व्यक्ति लोक-प्रतिष्ठा अथवा लोकैषणा से दूर भागता है किन्तु लोक-प्रतिष्ठा उसका पीछा नहीं छोड़ती। हमारे अन्दर यदि कामना हो तो केवल सात्विक प्रतिष्ठा की हो जिससे हमारे जीवन का कभी नैतिक पतन न हो। कर्मयोग के आत्मवान् साधक को सात्विक प्रतिष्ठा अनायास ही उपलब्ध होने लगती है। उसको इसे उपलब्ध करने के निमित्त लेशमात्र भी प्रयत्न करना नहीं पड़ता। उसकी कामना एवं प्रयत्न तो सदा सर्व प्रकार की द्वेष भावनाओं को दूर भगाने की होनी चाहिये। सर्व प्राणियों का हित-साधन ही उसकी मात्र साधना होनी चाहिये। उसके जीवन-कार्य-कलाप इतने स्वार्थशून्य हों कि द्वेष भावनाएँ उसके पास तक न फटकने पावें और सदा जनता जनार्दन का स्वच्छ प्रेम उसको उपलब्ध होता रहे।

पावका नः सरस्वती ।
वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ सा० १-१०-५

शब्दार्थ—(वाजेभिः) दिव्य ऐश्वर्य एवं ध्वनियों से (वाजिनीवती) संयुक्त (सरस्वती) जीवन में अमृतरस का सञ्चार करने वाली वेद-वाणी (नः) हम सबको (पावका) पवित्र करने वाली हो (धिया) ध्यान योग द्वारा सिद्ध की हुई यह वाणी (वसुः) हमारे लिये धन सम्पत्ति रूपा हो। और (यज्ञं) दिव्य साधना रूपी यज्ञ को (वष्टु) सिद्ध करने वाली हो।

भावार्थ—वेदों की वाणी दिव्य अर्थगाम्भीर्य से परिपूर्ण है। इसकी ध्वनि भी पूर्ण वैज्ञानिक एवं सौमनस्य का विस्तार करने वाली है। वेद वाणी निश्चय ही सरस्वती है, अमृतरस का मानव-जीवन में संचार करने वाली है। इसके प्रत्येक छन्द का ज्ञान गंगा में अवगाहन कराने वाला है। इसका तो कोई भी शब्द निरर्थक नहीं अपितु पूर्णतया सार्थक और शब्द-शास्त्र के गम्भीर मर्म का उद्घाटन करने वाला है। इसके मन्त्रों की रचना भी अद्भुत और महान् है।

वेदवाणी निश्चय मानव को पवित्र करने वाली है। मानसिक दुर्बलताओं को दूर हटाने वाली और जीवन में ऊँची उड़ान उड़ने की क्षमता प्रदान करने वाली है। वेदवाणी व्यर्थ के शब्दजाल से शून्य और तत्त्वज्ञान का सुगमता-पूर्वक बोध कराने वाली है। वेदों के अर्थ-गाम्भीर्य में मानव ध्यान योग की साधना द्वारा ही प्रवेश पा सकता है। शब्दों के मौलिक एवं यौगिक स्वरूप का बोध मानव को उदात्त भावनाओं से युक्त होकर गहन चिन्तन द्वारा ही उपलब्ध होता है।

यह वेदवाणी हमारे लिये अतुलित ज्ञान-सम्पत्ति का दिव्य आगार है। वेद-धन का धनी मानव-जीवन में कभी कंगाल, दीन, हीन और अकिञ्चन नहीं होता।

मानव जीवन का यह महान् यज्ञ अर्थात् दिव्य परोपकारादि कर्मों का

वितान इस वेदवाणी की उपासना द्वारा ही सिद्ध होता है।

प्रभो ! हमें इस वेदवाणी की दिव्य सम्पदा से युक्त कर दो और अपने जीवन को सफल बनाने के पावन मार्ग का पथिक बना दो।

६२

प्र सोमासो विपश्चितः।
अपोऽनयन्त ऊर्मयः।
वनानि महिषा इव ॥ सा० ५-१०-२

शब्दार्थ—(सोमासः) भक्ति रस से सराबोर (विपश्चितः) विद्वान् लोग (ऊर्मयः) लहरों की भाँति (अपः) प्रजाओं को (अनयन्तः) बहा ले जाते हैं (महिषाः) बड़े-बड़े मेघ (इव) जिस प्रकार (वनानि) जलों को।

भावार्थ—प्रज्ञा के धनी ज्ञानी मानव सर्वसाधारण जनता को जिस ओर चाहें चला सकते हैं। वह चाहें तो शान्तिप्रिय देश को कलह और युद्ध का केन्द्र बनादें, सुसंगठित राष्ट्र को क्षत विक्षत कर टुकड़ों में विभाजित करदें और चाहें तो भीरू कायर जाति को नवजीवन का दानकर एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में परिवर्तित करदें और बड़े से बड़े सम्राट् से टक्कर लेने वाला बना दें। वह चाहें तो वसुन्धरा को स्वर्ग बनादें और चाहें तो घातक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कर संसार में प्रलय उपस्थित कर दें।

संसार में विचार की शक्ति सबसे महान् है। वास्तव में विचार ही हैं जो वसुधा पर शासन करते हैं; बड़े से बड़े सैन्य बल को यह विचार और विचारक ही चाहें रक्षक बनादें और चाहें सर्वसंहारक बना दें।

जब संसार के विचारकों के अन्दर जीवन का कोई ऊँचा लक्ष्य होगा श्रद्धा का उनमें वास होगा, जब उनका जीवन यज्ञीय होगा, परोपकार प्रेम और कल्याण की भावनाओं से ओत-प्रोत होगा तो निश्चय वह अपनी आध्यात्मिक मस्ती में मस्ताने बन संसार को सुपथ का पान्थ बना देंगे।

जिस प्रकार आकाश में मंडराने वाले मेघ जलों को जिधर चाहते ले जाते हैं, जहाँ चाहें मूसलाधार वर्षा की झड़ी लगाकर और नदी नद नालों को उफना कर प्रलय उपस्थित कर दें और जहाँ चाहें रिमझिम-रिमझिम सुहावनी वर्षा

कर जनता को शाक कन्दमूल फल व अन्न से भरपूर कर दें। प्रभो! संसार के इन विचारकों को सुपथ का पथिक बनादो और माता वसुन्धरा को स्वर्गमयी बना दो।

६३

प्रियं नो अस्तु विश्पतिः।
होता मन्द्रो वरेण्यः।
प्रियः स्वग्नयोः वयम् ॥ ऋ० १-२६-७

शब्दार्थ—(वरेण्यः) वरण करने योग्य वन्दनीय (मन्द्रः) सुखों का दाता (होता) जीवन रस का सञ्चार करने वाला (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक परमात्मा (नः) हमारा (प्रियं) प्रिय (अस्तु) होवे और (वयं) हम सब भी (स्वग्नयः) श्रेष्ठ तप तेज और ज्ञान से युक्त हो (प्रियाः) उसके प्यारे बन जायें।

भावार्थ—हे प्राणनाथ प्रभो! आप ही एकमात्र हम सबों के वरेण्य, हो, वरण करने योग्य हो। आपके समान अथवा आपसे महान् अन्य कोई भी वस्तु संसार में वरण करने योग्य है ही नहीं। आप हमारे जीवन को सुख-शान्ति का धाम बनाने वाले हो। दुःख-दारिद्रय को दूर भगाकर हमारे अन्दर जीवन रस का सञ्चार करने वाले हो।

प्रभो! इस समस्त भूमण्डल के नहीं-नहीं अखिल ब्रह्माण्ड के रक्षक और पालक आप ही हो, ऐसी कृपा करो कि हम सब आपके उपासक आपके प्रिय बन जायें। आप अपना भक्त जानकर अपने पावन प्रेम की रज्जु में हमें बांध लो। हम अपने जीवन को तप-त्याग-परोपकार की अग्नि में तपावेंगे। दया-प्रेम और करुणा के शीतल जल से इसे धोवेंगे। बारंबार तपाकर इसे कुन्दन बनावेंगे। इसे तेजस्वी वर्चस्वी और ओजस्वी बनावेंगे। हम अपने जीवन को पवित्र माधुर्य से संसिक्त कर आपके स्वीकार करने योग्य बनावेंगे। विश्वास है कि आप अवश्य हमें अपनावेंगे।

प्रभो! अपने दिव्य मद से हमें भरपूर कर दिव्यमस्ती के संसार में झूमने का सौभाग्य हमें प्रदान करो।

महीरस्य प्रणीतयः ।
पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ऋ० ६-४५-३

शब्दार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर के (प्रणीतयः) प्रगति देने के मार्ग (महीः) महान् हैं (उत प्रशस्तयः) और उसकी महिमाएँ (पूर्वीः) सनातन हैं (अस्य ऊतयः) इसके नानाविध रक्षा के प्रकार (न क्षीयन्त) कभी क्षय होने वाले नहीं।

भावार्थ—यह सनातन अविनाशी घट-घटवासी प्रभु मानव को जीवन में नानाविधि प्रगति देता रहता है। इसके प्रगति देने के प्रकार भी अद्भुत विचित्र और महान् हैं। अनेक ऐसे कार्य हैं कि जिनके करने में मानव डरता, घबराता और कांपता है किन्तु जब वह उनको सिद्ध कर लेता है तो उसको अपार हर्ष होता और प्रकाश व समृद्धियाँ सामने दृष्टिगोचर होती हैं। इसकी प्रगति के मार्ग कण्टकाकीर्ण झाड़ियों, दुस्तर कान्तारों और पर्वत की दुरूह घाटियों, झञ्झावातों और सागर की उत्ताल तरंगों तक में बिछे हुए हैं। उन्हें समझना साधारण मानव के लिये सम्भव नहीं। घमण्डी मिथ्याभिमानी मानव जिन कार्यों को नीच, छोटा और ओछा समझता है उनको प्रसन्नतापूर्वक करने में प्रायः ज्ञानी मानव की प्रगति अन्तर्हित होती है।

इस सनातन प्रभु की महिमा भी महती और सनातन है। इस एकरस विद्यमान भगवान् की महिमा सदा अक्षय और अखण्ड रहने वाली है। इसकी महिमा का विस्तार भी इतना महान् है कि मानव लाख प्रयत्न करने पर भी इसका पार पा नहीं सकता। प्रभु के सनातन और महान् 'ज्ञान-बल-क्रिया' त्रिक में उसकी महिमा व्याप रही है।

प्राणनाथ प्रभु के रक्षा के प्रकार भी असंख्य अद्भुत और महान् हैं। अलक्षित रूप में वह अपनी सनातन प्रजा की रक्षा सदा करता रहता है। सत्पथगामी अपने भक्तों की रक्षा वह अग्नि की ज्वालाओं, भीषण झञ्झावातों, महामारी और शूली तक पर करता रहता है।

आओ ! हम सब श्रद्धा-समन्वित हो अपने उस महान् लीलामय भगवान् की मिलकर स्तुति और गुणगान करें।

पूषन् तव व्रते वयं।
न रिष्येम कदाचन।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ यजु० ३४।४१

शब्दार्थ—(पूषन्) हे पालन व पोषण करने वाले परमात्मन्! (ते व्रते) तेरे व्रत में (वयं) हम (कदाचन) कभी भी (न रिष्येम) चूक न करेंगे। (ते) तेरे (इह) इस जीवन में हम (स्तोतार:) स्तवन करने वाले (स्मसि) बनें।

भावार्थ—हे परमप्रिय प्राणाधार प्रभो! आप प्राणीमात्र के पालन पोषण और संरक्षण कर्त्ता हो, आप व्रतमय हो। आपके समस्त कर्म व्रत रूप ही हैं। अर्थात् पूर्ण सत्य से संयुक्त हैं। आप सर्वज्ञ हो इसलिये आपका कोई भी कार्य त्रुटियुक्त नहीं। प्राणीमात्र के कल्याण के लिये आपने इस सृष्टि को अपने सहज स्वभाव से सृजन किया है। विभिन्न प्रकार की जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माण आपने अहेतुक दया-सिन्धु, करुणा के आगार एवं प्रेम के सागर होने के कारण ही किया है। आप परम न्यायकारी हो। सत्पुरुषों का उत्थान और दुष्ट कुकर्मी जनों को दण्ड देने में आप कभी चूक नहीं करते। आपके न्यायपाश से कभी कोई बचकर निकल नहीं सकता। आपके दरबार में रिश्वत व खुशामद को स्थान नहीं।

आप जीवों के उत्थान के निमित्त फिर-फिर उनको मानव तन प्रदान करते और उनको अन्तर्यामी हो सत्य की उपासना और असत्य के त्याग की प्रेरणा देते हो। सत्पुरुषों के आप सदा संकटों व विपदाओं में सम्बल बनते और निविड अन्धकार में उनका सहज स्वभाव से पथ-प्रदर्शन करते हो।

प्रभो! हम भी आपके इन और ऐसे अन्य असंख्य व्रतों का अनुकरण करने वाले बन जायें। प्रभो! आप तो हमारे अभिन्न सखा, मित्र, बन्धु और हितू हो, माता पिता और गुरु हो, अतः हम आपको छोड़ कर अन्य किसकी वन्दना करें।

निश्चय हम अपने इस जीवन में आपके ही गुणों का कीर्तन, वन्दन और स्तवन करेंगे और आपके गुणों को अपने जीवन में धारण करने का सतत प्रयत्न करेंगे।

पवस्व दक्षसाधनो ।
देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ।। साम० ५ । ६ । ८

शब्दार्थ—(हरे) हे चितचोर जीवनरस (देवेभ्यः पीतये) देवताओं के पान के लिये (दक्षसाधनः) शक्ति का साधन बनकर (मरुद्भ्यो वायवे) मरुतों के विलास के लिये (मदः) मस्ती का सामान बनकर (पवस्व) पवित्र करो ।

भावार्थ—मेरी अष्टचक्रा नवद्वारा देह रूपी पुरी के देव प्यासे हैं अग्नि, सूर्य, चन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनीकुमार सातों देव सभी के प्यासे चले आते हैं । आँखें देखती हैं पर उनका देखना नीरस है । कान सुनते हैं पर उनके सुनने में मिठास नहीं । मुख बोलता है पर रूखा-सूखा ।

वन, पर्वत, कान्तारों को, लता गुल्म वितानों को, फूल पत्ते और कलियों को सरसाने वाले, वृक्ष की डालियों और शस्य श्यामल कृषि की हरियाली में झाँकी दे रहे चितचोर छवीले देव! अपनी मुस्कान की छटा अपनी इस देवपुरी पर भी छिटका दो, मेरी असक्त इन्द्रियों में नयी स्फूर्ति भर दो ।

मेरे श्वास चल रहे हैं परन्तु अत्यन्त शुष्क । प्राणायाम का अभ्यास शरीर में शान्ति नहीं सरसाता । स्वभाव की चञ्चलता बराबर बनी हुई है । मैं समझता हूँ कि मेरी साधना में स्नेहरस का पुट विद्यमान नहीं है । प्राणों की धौंकनी में प्रभु-भक्ति की चिकनाहट विना शान्ति सम्भव नहीं ।

हे प्रियतम चितचोर! एक बार मेरे प्राणों को अपने प्रेमरस में भिगो दो । मेरे प्रणव के जाप में अपनी सुरीली तान मिला दो । मेरे प्राणों में मस्ती आ जाय, मेरा प्रत्येक श्वास और प्रश्वास झूम उठे । मेरे रोम-रोम में नृत्य का सा नशीला मद पैदा हो जाय ।

प्रभो! आओ । रस बहाते हुए, पवित्रता का पावन प्रवाह लाते हुए। रीझे शुष्कता को दूर कर दो और मेरे जीवन को रसमय बना दो ।

प्र न इन्द्राय मादनं
हर्यश्वाय गायत ।
सखाय सोमयन्मे ॥ ऋ० ३ । १ । ६२

शब्दार्थ—(नः) हमको (प्रमादनं) दिव्य मद से विशेषतया युक्त करनेहारे (इन्द्राय) दिव्य ऐश्वर्य के भण्डार के लिये (हर्यश्वाय) अज्ञाननाशक तीव्रतम वेगवाले (मे सोमयन्) मुझे जीवन रस का पान करानेहारे (सखाय) प्राण सखा के लिये (गायत) गान करो ।

भावार्थ—हमारा प्राण-प्यारा प्रभु इन्द्र अर्थात् दिव्य ऐश्वर्यों का अतुलित भण्डार है। अज्ञानान्धकार का नाश कर हमारी बुद्धियों को प्रकाश से युक्त करने वाला है। उसकी गति का वेग असीम है। वह तो सर्व-व्यापक होने से सदा ही सर्वत्र पहले से ही विराजमान रहता है। उसकी व्यवस्था का उल्लंघन करने की किसी में शक्ति व सामर्थ्य नहीं।

वह प्राणप्यारा सखा हमें अपने दिव्य मद (सरूर) से युक्त करनेहारा है। वह सखा भी तो ऐसा है कि उसका कभी बिछोहा नहीं होता। हम प्रमाद-वश भले ही उसको भुला दें किन्तु वह भुलाने वाला नहीं, वह प्यारा प्रभु तो हम पर निरन्तर ही अमृत की वर्षा करनेहारा है। हमें जीवनरस से संयुक्त करने वाला है।

यदि हम सच्चे हृदय से भक्ति-भाव युक्त हो, उसकी शरण में जाएँगे तो निश्चय वह अपनी अपार दया का हाथ हमारी ओर बढ़ाएगा और हमें दैवी आनन्द की दिव्य धारा में गोता लगाने का सामर्थ्य प्रदान करेगा।

सारे ब्रह्माण्ड में उस परमप्रभु के अपार आनन्द का अनन्त सागर उमड़ रहा है किन्तु हम मन्दभागी उसका लाभ नहीं उठा पाते।

अतः आओ! मन-मन्दिर में उसकी महिमा का गान करें और अपने मानव-जीवन को सफल बनावें।

प्र वो मित्राय गायत।
वरुणाय विपा गिरा।
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ ऋ० ५। ६८। १

शब्दार्थ—(वः) तुम लोग (मित्राय) मौत से बचाने वाले के निमित्त (वरुणाय) वरण करने योग्य के लिये (विपा गिरा) प्रशंसनीय वाणी के द्वारा (प्रगायत) विशेष रूप से गान करो। उसकी (महि) महिमा (बृहत्) महान् है (क्षत्रावृत) भुवन व्यापिनी है।

भावार्थ—वह प्राणनाथ प्रभु हमारा सखा है। वह हमें सदा बुराइयों से बचाकर अच्छाई की ओर प्रगति करने की प्रेरणा देता है, वह हमें पतन के गर्त से निकालकर उन्नति के सोपान पर चढ़ने में सहायक होता तथा मृत्यु के मुख से बचा कर अमृतरस पान करने की प्रेरणा देता है। आओ हम सब मिल कर उसके गुणगान करें। वह ही हमारा प्राणप्यारा और जीवन का सर्वश्रेष्ठ आधार व सम्बल है। अतः वह ही एक मात्र हमारा उपास्यदेव है। हम अपनी सत्य से पवित्र की हुई वाणी द्वारा उसका यशोगान करें।

अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवं अनन्त क्रिया वाले उस महान् प्रभु की महिमा भी महान् है। उसकी महिमा का कोई पार नहीं पा सकता। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि ज्ञानी, योगी उसकी महिमा का पार पाने के लिये जीवन भर प्रयत्न कर-करके हार गये। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे सब दिशाओं में अग्नि, वरुण, इन्द्र, सोम, विष्णु, बृहस्पति नामों से उसकी महती शक्तियों और गुणों का बखान करते-करते हम थक जाते हैं। किन्तु उसकी शक्तियां और गुण अनन्त हैं और हम सान्त शक्ति एवं गुणों वाले ठहरे अतः पार पावें भी तो कैसे। तथापि जितना हम श्रद्धायुक्त हो उसकी महिमा का गान करेंगे उतना ही हम अपने जीवन का उत्थान करने वाले बनेंगे।

प्र वो सखायो अग्नये ।
स्तोत्रं यज्ञं च धृष्णुया ।
अर्च गाय च वेधसे ।। ऋ० ६-१६-२२

शब्दार्थ—(वः) तुम सब (सखायः) मित्रगण (अग्नये) ज्योतिः स्वरूप प्रभु के लिये (धृष्णुया) अपनी शक्ति भर (स्तोत्रं) स्तुतियों का पाठ (च) और (यज्ञं) यजन करो (वेधसे) उस परमज्ञानी के लिये (प्र अर्च) विशेष रूप से वन्दना करो (च) और (प्रगाय) विशेष रूप से उसका यश गान करो ।

भावार्थ—आओ हम सब अपने भेदभाव भुलाकर और परस्पर मिलकर, आपस में सब परस्पर सखा वा मित्र बनकर उस दिव्य प्रकाश के केन्द्र ज्योतिः स्वरूप परमात्मदेव के गुणों का बखान करने वाले स्तोत्रों का अर्थात् स्तुतिसमूहों का पाठ करें । और उसको प्रसन्न करने के हेतु अपने जीवनों में सदा शुभ कर्मों का अनुष्ठान करें । अपने जीवन को यज्ञमय बना कर, अपने को परोपकारप्रिय बनाकर त्याग और तप की भट्टी में तपावें ।

जनता जनार्दन की सेवा, दीन-दुःखी-दलित व पतितों की सेवा तथा उनके कल्याण के हेतु अपने सुख सम्पत्ति वैभव का प्रसन्नतापूर्वक त्याग करना निश्चय उस प्रभु की सर्वश्रेष्ठ वन्दना है । श्रद्धा-समन्वित हो यज्ञ की पवित्र अग्नि में पुनीत समिधा शाकल्य एवं आज्य की आहुति देना और "इदन्न मम" का भाव अपने हृदय में सतत भरते जाना सुन्दर कल्याणकारी साधना है ।

वह प्रभु गुरुओं का गुरु और ज्ञानियों में परम ज्ञानी है । उसकी शक्तियाँ अतुलित और असीम हैं, उसकी महिमा अपार है । कभी कोई मानव उसका पार पा नहीं सकता ।

आओ मित्रो आओ ! हम सब उसके मधुर मादक जीवन-रस (सोम) का पान करें और आध्यात्मिक मस्ती में झूम-झूम कर उसकी महिमा का बखान करें ।

बृहस्पते जुषस्वनो ।
हव्यानि विश्वदेव्य ।
रास्व रत्नानि दाशुषे ।। ऋ० ३-६२-४

शब्दार्थ—(बृहस्पते) हे महान् रक्षक चिरन्तन ज्ञानाधिप ! (नः) हम सब को (विश्वदेव्य) सकल दिव्य गुण युक्त (हव्यानि) भोग्य पदार्थों को (जुषस्व) प्रदान करो (दाशुषे) त्यागमय जीवन वालों को (रत्नानि) दिव्य ज्ञानादि रत्नों से (रास्व) युक्त करो ।

भावार्थ—परमपिता परमात्मा प्राणीमात्र की रक्षा करने हारा और सनातन ज्ञान का परम निधान है । वह प्राणीमात्र के लिये निरन्तर नाना भोग्य पदार्थों का सृजन करता है । संसार के सकल भोग्य पदार्थ उस अहेतुक दयासिन्धु की अपार कृपा से समस्त प्राणियों को उपलब्ध होते हैं ।

मानव अपने पुरुषार्थ द्वारा उस विश्वनाथ से मनोवांच्छित फलों को प्राप्त करता है । दैवी विभूतियों को उपलब्ध करने के लिये मानव को सतत उद्योग एवं श्रम करना होगा । यदि पूर्व-जन्म के फलभोगों के रूप में भौतिक सम्पदा मानव को प्राप्त भी हो जाए तो उसका सदुपयोग करने के लिए मानव को संयमी और पुरुषार्थी बनना चाहिए । संयम शून्य एवं पुरुषार्थहीन मानव की सम्पदा निष्फल ही चली जाती है ।

अतः आओ ! हम पूर्ण पुरुषार्थ, श्रम एवं संयमपूर्वक उस महान् दानी से दिव्य ज्ञान व बलादि रत्नों की याचना करें ।

सम्पदा पाकर हमें कभी अभिमान न हो, उस प्यारे प्रभु की उस थाती रूपी विभूति के प्रति मोह जागृत न हो ।

हम सदा सर्वदा त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए ही उसका उपभोग करने वाले बनें । दूसरों को उस सम्पदा में हिस्सा बँटाते हुए और दीन-दुःखी दरिद्रियों को यथोचित भाग प्रदान करते हुए उसका सेवन करें । यदि हम स्वार्थयुक्त होकर उसका उपभोग करेंगे तो निश्चय अपनी मानवता का नाश करने वाले बनेंगे ।

ब्रह्माणं ब्रह्मावाहसं ।
गीर्भि सखायमृग्मियम् ।।
गां न वोहसे हुवे ।। ऋ० ६-४५-७

शब्दार्थ—(ब्रह्माणं) महान् ज्ञान के दाता परमात्मा को (ब्रह्मवाहसं) आध्यात्मिक जीवन-रस के सञ्चारक को (सखायं) मित्र को (गीर्भिः) वैदिक स्तोत्रों द्वारा (ऋग्मियं) सर्वथा वन्दनीय को (ऊहसे) सम्यक् दर्शन के लिये (नः गां) अपनी वाणी का (वा) क्यों न (हुवे) प्रयोग करें।

भावार्थ—परमात्मा हम सब का सखा है मित्र बन्धु और हितू है। हमें सदा सत्पथ की ओर प्रगति, करने की प्रेरणा देने वाला है। प्राणीमात्र का अत्यन्त हित एवं कल्याण करना उसका सहज स्वभाव है। वह मानव-जीवन में आध्यात्मिक रस का सञ्चार करने वाला है।

प्रकृति-पूजा से हटकर आध्यात्मिकता (वहदानियत) में सतत संलग्न रहने की वह प्रेरणा देने वाला है। वह तो महतो महीयान् और ज्ञान का परम निधान है।

मानव-जीवन की एकमात्र साधना उस प्यारे प्रभु को प्राप्त करना ही है। नाना प्रयत्नों द्वारा उसके आनन्द-धाम तक पहुँचना मानव-जीवन का परम कर्त्तव्य है परम लक्ष्य है। हम वेदवाणी के सहयोग से उसके स्वरूप को जानने का सदा प्रयत्न करें। हमारा संगीत उसके दिव्य ज्ञान से सदा ओत-प्रोत हो। भक्ति से भीगा हमारा ज्ञान उस प्यारे प्राणनाथ प्रभु के सम्यक् दर्शन में हमारा सहायक हो। उस प्रभु का गुणगान करते-करते हमारे नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगे और हमारा शरीर पुलकायमान हो उठे; बस यही हमारी आकांक्षा है। ऐसा पुनीत दिन इस जीवन में आवे और शीघ्र आवे, ऐसी हे नाथ आप हम पर कृपा करो।

प्रभो ! वह दिन कब आवेगा जब मैं आपका स्तवन करते २ बेसुध होकर मन मन्दिर में आपकी दिव्य ज्योति का दर्शन करने का पात्र बनूंगा और अपने भीतर अन्तर्तम का दर्शन कर अपने मानव जीवन को सफल बनाऊँगा।

भद्रं भद्र न आभर।
इषमूर्जं शतक्रतो ।।
यदिन्द्र मृडयासि नः ।। साम० १-८-६

शब्दार्थ—(शतक्रतो) हे असंख्य शुभकर्मों के कर्त्ता। (इषमूर्ज) अनादि जीवन-उपयोगी पदार्थों तथा पराक्रम को भद्र (भद्रं) तथा दिव्य कल्याण को (नः) हम सब के लिये (आभर) धारण करो (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो (यत्) जो (नः) हम पर (मृडयासि) आप कृपा करते हो।

भावार्थ—वह अहेतुक दयासिन्धु परमात्मा निश्चय हम सब जीवधारियों पर सतत अपनी कृपा करते हैं। उस प्रभु की कृपा का हाथ सदा हमारे लिये प्रसारित है। प्यारे प्रभो! आप तो शतक्रतु हैं। आप महान् के पवित्रतम शुभ कर्मों की गणना करना हमारी शक्ति के बाहर है।

आपने असंख्य प्रकार के खाद्य और पेय पदार्थों का निर्माण हमारे लिये ही किया है। इन पदार्थों की प्राप्ति और इनका सदुपयोग करने की शक्ति और ज्ञान भी आपने हमको दिया है अतः हम सदा परिश्रमपूर्वक इन पदार्थों का उपार्जन करेंगे और इनका सदुपयोग करेंगे।

विश्व की यह सकल विभूतियाँ आपकी हैं। आप ही तो इन सब के स्वामी हो। हम तो केवल आपकी इस धरोहर को धारण करने वाले हैं। हम कभी भूल कर भी इनका दुरुपयोग नहीं करेंगे। यह तो आपकी धरोहर ठहरी, फिर इसके प्रति मोह और ममत्व कैसा! इनको पाकर अभिमान और दया कैसी!

प्रभो! कृपा करो और हमें अपनी शरण में ले लो। हम तो आपके ही एकमात्र उपासक हैं।

हम पर सदा कल्याण की वर्षा करो। हम सदा भद्र भावनाओं से अपने जीवन को भरपूर करें। भद्र ही सुनें, भद्र ही देखें और भद्र कर्मों के अनुष्ठान करने का व्रत धारण करने वाले बन जायें।

भारतीडे सरस्वति।
या वः सर्वा उपब्रुवे ।।
ता नश्चोदयत श्रिये ।। ऋ० १-१८८-८

शब्दार्थ—(भारती) भरण करने वाली (सरस्वति) हे वेदमाता (इडे) मैं तेरी स्तुति करता हूँ (या) जो (वः सर्वाः) तुम सबको (उपब्रुवे) विशेष ज्ञान का बखान करती है (तानः) वह हम सबको (श्रिये) दिव्य ऐश्वर्य के निमित्त (चोदयत) प्रेरित करें।

भावार्थ—सतत ज्ञान रूपी रस का वहन करने वाली सरस्वती वेद माता मानवों का कल्याण करने वाली है। उनको सुपथ का पथिक बना कर दैवत्व को प्रदान करने वाली है। मैं पूर्ण आस्था एवं श्रद्धा के साथ उसकी परिचर्या में उपस्थित होता हूँ।

हमारी वेद माता हमसे कुछ छिपाकर रखने वाली नहीं, अपितु सरल एवं सुगम रूप में हमारे अन्दर ज्ञान का दीपक जलाती और प्रशस्त प्रकाश-पथ से गति करने की हम को क्षमता प्रदान करती है।

सरस्वती की उपासना से भौतिक सम्पत्ति एवं विभूति के साथ-साथ आध्यात्मिक ऐश्वर्य भी उपलब्ध होने लगता है।

आध्यात्मिकता पर अवलम्बित ऐश्वर्य एवं ज्ञान ही विश्व में दिव्य शान्ति एवं सुख का साम्राज्य विस्तृत करते हैं।

संसार की संस्कृतियों का आदि-स्रोत वेद ही हैं। सब संस्कृतियाँ इसी ही की दुहिताएँ, पौत्रियाँ एवं दौहित्रियाँ हैं। मातामही सरस्वती में आस्था रखते हुए हम संसार की सर्व संस्कृतियों में सामञ्जस्य, सौहार्द एवं स्नेह का निर्माण करने वाले बन जायें।

संसार के मतवादों का वेद के प्रकाश में मन्थन करना इस युग की पुकार है। मानवता का विस्तार करने का यह ही प्रशस्त मार्ग है। मन्थन द्वारा उपलब्ध विष का निराकरण करते हुए तथा अमृत का स्वागत करते हुए उसको आत्मसात् करना और चिरन्तन सत्य का उसको अंग समझते हुए सरस्वती माता के चरणों में उसकी भेंट चढ़ाना आर्य जाति का महान् कार्यक्रम है।

प्रभो! हमें शक्ति दो, इस पुण्य कार्यक्रम को करने में हम संलग्न हों।

मधु नक्तमुतोषसः ।
मधुमत्पार्थिवं रजः ।
मधुद्यौर स्तु नः पिता ॥ ऋ० १-९०-७

शब्दार्थ—(नक्तं) रजनियाँ (उत) और (उषसः) उषाएँ (नः) हमारे लिये (मधु) माधुर्य सञ्चारक हों (पार्थिवं) पृथिवी के (रजः) कण (मधुमत्) माधुर्य्ययुक्त हों (द्यौः) द्यौलोक भी (नः पिता) हमारा रक्षक है (मधु अस्तु) जीनव रस का सञ्चारक होवे।

भावार्थ—प्राणनाथ प्रभो ! विश्राम एवं स्वस्थतादायक रजनियाँ हमारे लिये मधु का सञ्चार करने वाली हों। हम इन रजनियों का विधिवत् सेवन करने वाले बनें ? दूसरे प्रहर के आरम्भ में शयन कर और चौथे प्रहर के आरम्भ में जागकर आपके चिन्तन करने वाले बन जाएँ।

उषाकाल की शीतल मन्द सुगन्ध-युक्त समीर का सेवन कर उदय होते सूर्य के नैसर्गिक दृश्य का अवलोकन कर भक्ति-भावयुक्त बन जायें। निश्चय यह उषा की पावन अमृत बेला जीवन में दैवी मादकता का सञ्चार करने वाली हमारे लिये होवे।

पृथिवी माता जिसका एक-एक कण हमें प्राणों से प्यारा है और जो हमारे पूर्वजों की यज्ञ-स्थली है—बलिदानों की पवित्र भूमि है—और जो हमें जीवन की अनेक वस्तुएँ निरन्तर प्रदान करती रहती है, हम श्रद्धा से युक्त हो प्राणपण से उसकी रक्षा हेतु अपना सर्वस्व होम करने के व्रती बनें। पृथिवी के कण-कण में हम आपकी दिव्य विभूति के दर्शन करने वाले बन जायें। सूर्य लोक और इसी प्रकार अनेक प्रकाशमान महान् लोक ध्रुव, चित्रा स्वाति आदि नक्षत्र तथा मंगल, बृहस्पति, बुध, शुक्र आदि ग्रह हमारे जीवन में अपने प्रकाश, तेज एवं द्युति का सञ्चार कर माधुर्य का सञ्चार करने वाले बन जायें। रात्रि में यह तारों-भरा विस्तृत नभमण्डल और उसकी आकाशगंगा हमारे जीवन में जीवन रस अर्थात् आध्यात्मिक मस्ती के भरने वाले हो जाएँ।

मधुमन्नो वनस्पतिः ।
मधुमाँ अस्तु सूर्यः ।।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।। ऋ० १-९८-८

शब्दार्थ—(वनस्पतिः) वनस्पति जगत् (नः) हमारे लिये (मधुमान्) माधुर्ययुक्त (अस्तु) होवे (सूर्यः) सूर्य का तेज (मधुमान्) मधु सञ्चार करने वाला होवे (गावः) गौवें हमारे लिये (माध्वीः) मधुर रस का प्रदान करने वाली (भवन्तु) होवें ।

भावार्थ—प्रभो ! राष्ट्र की महती सम्पत्ति वनस्पति अर्थात् वन, उपवन, वाटिका और कान्तार स्वस्थताकारक, नैरोग्यदायक, पुष्टिकारक फल, फूल, कन्दमूल एवं रस का सञ्चार करनेवाली होवें । आवश्यकतानुसार वर्षा होने में सहायक हों । प्रचुर मात्रा में हमें उत्तम काष्ठ, समिधा और ईंधन उपलब्ध होवें । आपकी कृपा से एक एक वृक्ष हमारे जीवन में माधुर्य का सञ्चार बन जावे । हम वृक्षों के नाशक न बनकर उनके रक्षक बन जावें ।

सूर्य देव का प्रकाश, आतप और तेज हमारे लिये कल्याणकारी होवें । सूर्य की किरणें हमारे लिये जीवन रस का सञ्चार करने वाली हों । हम प्रभात वेला में उदय होते हुए सूर्य की किरणों को अपने निमीलित नेत्रों और वक्षस्थल पर धारण कर अपनी दर्शन शक्ति को मादक करने वाले और हृदय-दौर्बल्य को दूर हटाने वाले बन जाएँ । स्वच्छ वायु और धूप में हम अधिक से अधिक निवास करें । ग्रीष्म ऋतु का प्रचण्ड सूर्य भी हमें हानि पहुँचाने वाला न हो । सूर्य की पवित्र रश्मियाँ हमें शुचिता प्रदान कर माधुर्य से संयुक्त करें ।

अघ्न्यागों के हम सेवक बन जाएं । जीवन यज्ञ की प्रतिष्ठानों की रक्षा और उसके वंश की वृद्धि करने में हम सदा प्रयत्नशील रहें । नाना रोगों से त्राण देने वाला तथा पुष्टिकारक सात्विक गोरस हमारे जीवन में सच्चे माधुर्य का सञ्चारक हो । यह सात्विक गोदुग्ध हमें आध्यात्मिक मस्ती से युक्त करने वाला बना देवे ।

मधु वाता ऋतायते ।
मधु क्षरन्ति सिन्धवः ॥
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ऋ० १-९०-६

शब्दार्थ—(नः) हमारे लिये (वाता) वायु (मधु) माधुर्ययुक्त (ऋतायते) बह रही है (सिन्धवः) नदियाँ (मधु) माधुर्ययुक्त (क्षरन्ति) प्रवाहित हो रही हैं (ओषधीः) लता बेल पादप आदि (नः) हमारे लिये (माध्वीः) माधुर्य से संयुक्त (सन्तु) होवें ।

भावार्थ—प्रभो ! आपकी कृपा से हमारे लिये वायु सुखकारी और आनन्ददायिनी होवे । शीतल मन्द सुगन्ध समीर हमारे लिये प्रवाहित हो । वायु-शुद्धि के लिये हम सदा यज्ञ यागादि करने वाले बनें । तथा अपने निवास-स्थान व अड़ौस-पड़ौस को स्वच्छ रखने में प्रयत्नशील हों । एतदर्थ श्रम के कार्यों के करने में हम कभी प्रमाद न करें । वायु के झोंके हमारे लिये दिव्य मादकता प्रवाहित करने वाले बन जाएँ ।

कल-कल निनाद करने वाली नदियाँ और उनकी मनोहर लहरें हमारी हृदय-तन्त्री को हिलाने वाली हों । यह नदियाँ अपने सतत प्रवाह द्वारा हमें अपना जीवन प्रगतिशील बनाने का पाठ पढ़ाने वाली बन जाएँ । इन नदियों के शान्त प्रवाह को निखारकर हम आध्यात्मिक मादकता में सराबोर हो जायें हम इन नदियों के कूल और संगमों पर शान्तचित्त बैठ कर आपके ध्यान में मग्न हो जीवन-रस का पान करने वाले बन जायें ।

प्रत्येक लता, बेल, वितान, पादप, पौधा और वृक्ष हमारे लिये सुखकारी हो । इनकी छाँव में हम अपनी दिव्य छवि के दिव्य दर्शन करने वाले बन जायें ।

पुष्पों की सुगन्ध हमारे जीवन में आध्यात्मिक सुरभि सरसाने वाली हो । इनके द्वारा उत्पन्न होने वाले फल, फूल, कन्द और रस हमारे जीवन में सात्विकता का सञ्चार करने वाले बन जायें । प्रभो ! आपकी कृपा से आपकी रची यह सरल वस्तुएँ हमें सुख शान्ति और सौमनस्य प्रदान करने वाली बन जायें तथा सोम-सरोवर के अवगाहन में यह हमारी सहायक बन जायें । यह ही हमारी सब की मनोकामना है ।

महीरस्य प्रणीतयः ।।
पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः।। ऋ०-६-४५-३

शब्दार्थ—(अस्य) इस परमात्मदेव की (प्रणीतयः) कृपायें (महीः) महान् हैं (उत) तथा (प्रशस्तयः) इसकी यशगाथाएँ (पूर्वीः) प्राचीन सनातन हैं (अस्य) इसकी (ऊतयः) रक्षा के साधन (न क्षीयन्ते) कभी नष्ट नहीं होते।

भावार्थ—परमात्मदेव सहज स्वभाव से प्राणीमात्र पर दया करने वाले हैं। प्राणियों के कल्याणार्थ ही तो प्रभु ने इस संसार की रचना की है। असंख्य प्रकार के पेय एवं खाद्य पदार्थों को प्रभु ने प्राणियों के निमित्त उत्पन्न किया है। दीन दुःखी दरिद्रियों का वह सदा भरण करने वाले हैं। पापी पतितों पर उसकी कृपा का वरद हस्त सदा विस्तृत रहता है। उनकी महिमा अपार है। उनके सनातन ज्ञान, बल एवं दिव्य कर्मों का पूर्ण वखान करना मानव की बुद्धि के परे की वस्तु है।

वह प्रभु अपनी प्रजाओं की नानाविधि रक्षा करते हैं। वड़े से बड़े संकट उपस्थित होने पर अपनी प्रजाओं की आत्माओं में वल का सञ्चार करते हैं। धैर्य्यपूर्वक अपने कर्मों के कारण उपस्थित बाधाओं को सहन करने की सामर्थ्य प्रदान करते हैं। विपरीत परिस्थितियों में सत्य-पथ का अनुसरण करने का सुन्दर विवेक उनकी बुद्धियों में भरते और अन्याय, अत्याचार से, अनीति, अनाचार से लोहा लेने की क्षमता प्रदान करते हैं।

उस पावन प्रभु की रक्षा के साधन भी अनन्त और अपार हैं।

भयङ्कर भूकम्प और जलप्लावनों में अग्नि की प्रचाण्ड ज्वालाओं और सागर की उत्ताल तंरगों में भी उस प्रभु के असंख्य रक्षक हस्त प्रसारित रहते हैं। वस आवश्यकता है मानव के अन्दर उनके प्रति सच्ची आस्था और प्रेम की, निष्ठा और भक्ति की तथा धर्म के सनातन नियमों को जीवन में धारण करने की।

प्रभो ! हम आपके हैं और आपके ही रहेंगे। आपकी आज्ञाओं के वाहक बनकर आपके प्रति आत्मसमर्पण करेंगे।

महो अर्णः सरस्वती ।
प्रचोदयति केतुना ॥
धियो विश्वविराजति ॥। ऋ० १ । ३ । १२

शब्दार्थ—(विश्वा) अखिल विश्व में (विराजति) विशेष प्रकार से प्रकाशमान (महो अर्णः) महान् सागर के समान (सरस्वती) अतुलित ज्ञान का भण्डार परमात्मा (केतुना) अपनी प्रेरणा द्वारा (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयति) विशेष रूप से चेतना कराता है ।

भावार्थ—प्रभो ! आप अतुलित ज्ञान के भण्डार हैं । ज्ञान तथा शक्ति के दातार आप ही हैं । आप गुरुओं के गुरु हैं । जो कुछ भी सत्यज्ञान हमें उपलब्ध होता है उसके आदि विधाता आप ही हो । आप सर्वश्रेष्ठ दिव्य-बल के केन्द्र हो । आपका बल ही एक मात्र हमारे जीवन का सम्बल है । असहायों के सहाय और अबलों के बल आप ही हो ।

प्रभो ! अखिल विश्व में आपकी ज्योतिः जगमगा रही है । सर्व लोक-लोकान्तरों, नक्षत्रों-तारागणों की ज्योतिः के आधार आप ही हो । सूर्य और चन्द्रमा आपकी ज्योतिः से ही भासमान होकर उष्ण और शीतल प्रकाश धरती पर फैला रहे हैं । असंख्य तारागणों से निर्मित यह आकाशगंगा आपकी ज्योतिः से ही आकाश में अपनी छटा सरसा रही है । विद्युत् और अग्नि की ज्वालाओं में आपकी ही दमक और आभा व्याप्त है ।

आप सदा सत्कर्मों के अनुष्ठान की दिशा में मानवों को प्रेरणा देते हो । प्रेरणारूपी आपकी अन्तर्ध्वनि (Inner Voice) सदा अन्धकार में पथ प्रदर्शन कराती है । अति विकट संकटों के उपस्थित होने पर धैर्य्य का सञ्चार करती और खतरे की घाटियों से निर्भयतापूर्वक विचरण करने की शक्ति आपकी प्रेरणा से ही मानव को प्राप्त होती है ।

पाप-पङ्क में गहरे धंसकर हम हतभागी आपकी अन्तर्ध्वनि का श्रवण नहीं करते । आपकी आन्तरिक प्रेरणा की निरन्तर उपेक्षा करते और अपने जीवन को नारकी बनाते और नष्ट कर डालते हैं । प्रभो ! हमें शक्ति दो कि पशुता त्याग कर हम यथार्थ में मानव बन जायें और आपके अमृत पुत्र बनकर जीवन में अमरत्व को प्राप्त करें ।

मा प्रगाम पथो वयम् ।
मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ॥
मान्तः स्युर्नो अरातयः ॥। ऋ० १० । ५७ । १

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो! (पथः) वेद विहित प्रशस्त मार्ग से (वयं) हम (मा प्रगाम) दूर न चले जायें (सोमिनः) जीवन-रस का सम्पादन करने वाले हम (मा यज्ञात्) यज्ञोय कर्मों से परे न हट जायें (अरातयः) कामक्रोधादि शत्रु (नः) हमारे (अन्तः) अन्दर (मा स्थुः) बैठने वाले न हों।

भावार्थ—ऐ सकल ऐश्वर्य एवं विभूति के स्वामिन् परमात्मन्! आपकी कृपा से हम सब प्रशस्त वैदिक मार्ग से अपने जीवन में प्रगति करने वाले बन जायें और कभी भूलकर भी प्रशस्त वैदिक मार्ग से विचलित न हों। सत्य-ज्ञान के पावन-पथ से विचलित होना तो मानव के लिये मृत्यु का आलिंगन करना है। हमने तो अपने जीवन में सोमरस का निष्पादन करना है।

हमारे अन्दर जो सोमरस भरा हुआ है उसका मन्थन करना है। दधि में छिपे घृत और तिलों मे लुके तैल की भान्ति अपने अन्दर छिपे सोम का—दिव्य जीवन-रस का ध्यान-योग की मथनी में प्रणव द्वारा मन्थन करना है। हम इस मन्थन रूपी यज्ञ से कभी पराङ्मुख न हों।

हमारे जीवन का एक-एक क्षण यज्ञ अर्थात् परोपकार कर्म के लिये समर्पित हो हम भौतिक अग्नि में श्रद्धा-समन्वित हो, ज्ञानपूर्वक मन्त्र का उच्चारण कर पवित्र शाकल्य की आहुति डालेंगे। हमारा यह यज्ञानुष्ठान कभी हमारे अन्दर मिथ्या अभिमान जागृत करने वाला न हो। हम निष्ठा-पूर्वक अपने जीवन में "इदन्न मम" के आदर्श को निभाएंगे।

हमारे अन्दर नाना प्रकार के काम, क्रोध, लोभ-मोह, आदि शत्रु छिपे बैठे हैं। हम दिव्य-यज्ञ के आध्यात्मिक धूम्र से इन शत्रुओं को दूर भगावेंगे। हमारे यह मन में छिपे पाप निश्चय हम से दूर भागेंगे। इन शत्रुओं को दूर भगाना ही हमारी यज्ञीय साधना होगी। प्रभो! कृपा करो और इन शत्रुओं से लोहा लेने में हमें समर्थ बना दो।

मित्रं वयं हवामहे ।
वरुणं सोमपीतये ॥
जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ऋ० १ । २३ । ४

शब्दार्थ—(वयं) हम (सोमपीतये) दिव्य जीवन रस का पान करने के निमित्त (वरुणं) वरण करने योग्य (मित्रं) प्राण सखा परमात्मा का (पूतदक्षसा) पवित्रता और बुद्धिमत्ता के साथ (जज्ञाना) यजन करते हुए (हवामहे) आवाहन करते हैं ।

भावार्थ—सोमरस का पान करने के लिये अर्थात् दिव्य जीवन रस को अथवा आध्यात्मिक मादकता को—वहदानियत की मस्ती को—अपने जीवन में लाने के लिये अपने अन्दर पवित्रता धारण करते हुए और आन्तरिक स्वच्छता को लाते हुए हम बुद्धिमत्ता के साथ ज्ञानपूर्वक मनोयोग द्वारा यजन करने वाले बन जायें । हमारा यह यज्ञ पूर्णतया अध्वर हो । इसमें किसी भी प्रकार की हिंसा की गन्ध न हो तथा याज्ञिकों के आन्तरिक जीवन से भी हिंसा की भावनाएँ नष्ट हो जायें । सर्वभूत हिते रत: के आदर्श को हम अपने जीवन में ढालने वाले बन जायें । "अभयं सर्व भूतेभ्य:" अर्थात् संसार के सर्व प्राणियों हमसे भय रहित हो जायें । हमको संसारमें कभी किसी से भय न हो ।

यज्ञ में पड़ी हुई हमारी प्रत्येक आहुति जीवन में "इदन्न मम" के भाव को चरितार्थ करने वाली हो । हमारा स्वाहाकार स्वार्थ त्याग की भावना को हमारे अन्दर जागृत करने वाला हो ।

हम अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर अपने उस सर्वश्रेष्ठ उपास्यदेव जीवन-सखा का अर्थात् उस प्यारे प्राणनाथ प्रभु का अपने मन मन्दिर में आवाहन करने वाले बन जायें । मन्त्र के साथ उच्चरित प्रणव हमारी हृत् तन्त्री को प्रकम्पित करने वाला बन जाय । श्रद्धा और ज्ञानपूर्वक भौतिक अग्नि में दी हुई हमारी आहुतियाँ हमें उस परम पवित्र दिव्य आध्यात्मिक अग्नि में यजन करने वाला बना दें । बस यही हमारे जीवन की साधना हो और हमारे इस यजन का एकमात्र प्रयोजन हो ।

यदङ्ग दाशुषे त्वम् ।
अग्ने भद्रं करिष्यसि ॥
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ॥ ऋ० १ । १ । ६

शब्दार्थ—(अंग अग्ने) हे परम आनन्द एवं ज्योतिः स्वरूप विश्वविनायक स्वामिन् (त्वं) तू (दाशुषे) दानशील त्यागी का (भद्रं) कल्याण (करिष्यसि) निश्चय करने वाला है (अंगिरः) हे देव (एतत्) यह (तव) तेरा (सत्यं) सत्य व्रत है।

भावार्थ—प्रभो! आप नस-नाड़ी के बन्धन में कभी न आने वाले अकाय और अव्रण हो। आप शुचिता और पवित्रता के आगार हो। वन्दनीय ज्योतिः स्वरूप और आनन्द स्वरूप हो और प्राणीमात्र का कल्याण करने वाले हो और उस प्राणी का, जो दानशील है और बिना यश की कामना के और बिना प्रतिफल की आकांक्षा के धन, अन्न, वस्त्र, भूमि, विद्या आदि का दान करता रहता है तथा देश, धर्म और मानवता की रक्षाहित सतत उद्यत रहता है, आप निश्चय कल्याण करते हो।

नाना दुःख बाधाओं से, विपत्ति आपत्ति और संकटों से उसका त्राण करते हो, संकटों का सामना करने के हेतु उसके अन्दर निर्भयता, हर्ष और उल्लास उत्पन्न करते हो, आप तो उसको हँसते-हँसते जीना और हँसते-हँसते विदा होने की पुनीत भावना से संयुक्त करते हो।

त्याग और बलिदान पथ के पथिक को आप "चरैवेति चरैवेति" का पाठ पढ़ाने वाले हो अर्थात् इस जीवन पथ पर दृढ़तापूर्वक "चलते रहो चलते रहो" बस यह ही उसका प्रयाणगान बन जाता है। घोर तमसाच्छन्न निविड़ अन्धकार में, भीषण वर्षा और झञ्झावात के प्रबल झकोरों में उस राही को आत्मबल का सम्बल प्रदान करने वाले आप ही हो।

यस्मादृते न सिध्यति ।
यज्ञो विपश्चितश्च न ।।
स धीना योगमिन्वति ।।। ऋ० १ । १८ । ७

शब्दार्थ—(यस्मादृते) जिसके विना (विपश्चितः) ज्ञानी मानव की (यज्ञः) जीवन की साधना (न सिध्यति) सिद्ध नहीं होती (च) और (धीनां) बुद्धियों के (योगं) योग को (सः) वह (न) नहीं (इन्वति) प्राप्त होता है।

भावार्थ—सदा शुभ कर्मों की प्रेरणा देने वाला और इन पुनीत कर्मों के अनुष्ठान में आत्मबल को जुटाने वाला वह प्राणप्यारा हमारा प्रभु ही है। जीवन की साधना करना ज्ञानी मानव का महान् कर्त्तव्य है। ईश्वरीय आज्ञा का वाहन बन श्रेष्ठतम कर्मों का अनुष्ठान ही मानव-जीवन की सच्ची साधना है। किन्तु यह साधना बिना प्रभु विश्वास और ब्रह्मनिष्ठा के सम्भव नहीं। आत्मविश्वासी और ब्रह्मपरायण मानव ही अपने जीवन को सही रूप में साध सकता है। मानवता से देवत्व की ओर प्रगति करने के लिए दृढ़ आत्म-विश्वास की अनिवार्य आवश्यकता है।

देश, जाति एवं राष्ट्र की रक्षाहित जितने भी मानव यज्ञ रचता सब में उस अहेतुक दयासिन्धु का वरद हस्त विद्यमान रहता है। जीवन के संग्राम में जब कर्त्तव्य-पथ विपरीत परिस्थितियों के निविड़ अन्धकार में विलुप्त हो जाता है तब वह हमारा प्राणप्यारा मार्ग-दर्शक सखा ही हमारा पथ-प्रदर्शन करता और कठोरतम पथ पर चलने की क्षमता और शक्ति हमारी नस-नाड़ियों में संचारित करता है।

बुद्धियोग की सिद्धि भी उस प्राणनाथ प्रभु के सहारे ही सम्भव है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार पर काबू पाना और अनुकूल दिशा में अपनी गति निर्धारित करना मानव के लिये तब ही सम्भव है जब पूर्ण ईश विश्वासी बन कर अपने सब शुभ कर्म वह ब्रह्मार्पण करने वाला बन जाता है।

प्रभो ! हम अपने शरणागतों के यज्ञीय जीवनों को सफल बना दो।

यं त्वा गोपावनो गिरा ।
अनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ऋ० ८-७४-११

शब्दार्थ—(अग्ने) दिव्य प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (यं) जिस (त्वा) आपका (गोपावनः) साधना द्वारा इन्द्रियों को शुद्ध करने वाला (अंगिरः) आध्यात्मिक अग्नि का उपासक मानव (गिरा) अपनी वाणी द्वारा (अनिष्ठद्) स्तवन करता है (सः) ऐसे आप (पावकः) जो पवित्रता के आगार पतित-पावन हो (हवं) उसकी प्रार्थना को (श्रुधो) सुनते हो ।

भावार्थ—इन्द्रियों के दास भौतिक विभूति के उपासक मानव के ईश्वर स्तुतिपरक गीत व्यर्थ जाते हैं । ऐसा गायक अपने को धोखा देता है और श्रोताओं को धोखा देने वाला है । इन्द्रियों को वश में रखने वाला इन्द्रियजित् मानव जब आध्यात्मिक अग्नि में यजन करने का अभ्यासी बन जाता है तब उसकी सत्य परिपूत वाणी द्वारा निःसृत स्तोत्रों को वह ज्योतिःस्वरूप प्रभु अवश्य सुनते हैं ।

परमात्मदेव को पवित्रता प्यारी है ; जिसने परसेवा, परोपकार और परमार्थ-साधना द्वारा आन्तरिक शुचिता उपलब्ध की है वह निश्चय ही उस प्रभु का प्यारा बन जाता है । पवित्र जीवन वाले मानव पर निश्चय ही उस परम प्रभु की अपार अनुकम्पा होती है । पवित्र मानव के अन्तस्तल से निकले हुए शब्द संसार में कम्पन उत्पन्न कर देते हैं । जातियों और राष्ट्रों के भाग्यचक्र को बदल देते हैं ।

प्रभो ! हमें वह सद्बुद्धि प्रदान करो कि हम अपनी इन्द्रियों के स्वामी बनकर आध्यात्मिक अग्नि अर्थात् ब्रह्माग्नि में यजन करने वाले बन जायें तथा सेवाधर्म का पालन करते हुए हम निज जीवन को सफल बनाने वाले बन जायें और हमारे जीवन से निःसृत पवित्रता की सुगन्ध संसार को वासित करने लगे ।

राजन्तमध्वराणां ।
गोपामृतस्य दीदिविं ।
वर्द्धमानं स्वे दमे ॥ ऋ० १-१-८

शब्दार्थ—(अध्वराणां) हिंसा रहित यज्ञों एवं परोपकार कर्मों को (राजन्तं) प्रकाशित करने वाले अग्नि देव का (ऋतस्य) जो सम्यक् ज्ञान की (दीदिविं) दिव्य प्रकाश की (गोपां) रक्षा करने हारा है और जो (स्वे) निज (दमे) सामर्थ्य में (वर्द्धमानं) वृद्धि को प्राप्त है ।

भावार्थ—सर्वथा हिंसा से शून्य यज्ञों की परमात्मदेव निश्चय रक्षा करने हारे हैं । निष्कामभाव से किये गये कर्म ही उसको प्यारे हैं । ऐसे यज्ञों तथा ऐसे कर्मों के बीच वह स्वयं प्रकाशित होते हैं अथवा ऐसे याज्ञिकों एवं कर्मयोगियों को वह आत्मतेज से युक्त कर देते हैं ।

सत्यज्ञान तो सदा मानव के कल्याणहित उदित रहता है । सत्यज्ञान के आलोक में विचरने वाला मानव निश्चय दैवी सम्पत्ति को प्राप्त करता है । सत्यज्ञान इस संसृति में शाश्वत रहने वाला है । उसके दिव्य प्रकाश की रक्षा परमात्मा स्वयं करनेहारे हैं । सत्यज्ञान बिन मानव का कल्याण नहीं । उसके बिना हृदय की ग्रन्थियाँ खुलती नहीं और संशयों का उच्छेद भी नहीं होता । मतवाद झंझावात में फँसे हुए मानव का उत्थान सम्भव नहीं । कारण कि उसकी बुद्धि विकसित न होकर कुण्ठित हो जाती है । प्रकाश युक्त होने के स्थान पर तमसावृत हो बैठती है । अत: अन्धविश्वास और पक्षपात से ऊपर उठकर सत्यज्ञान की प्राप्ति के निमित्त ही मानव को अहर्निश प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

परमात्मदेव की शक्तिपूर्ण एवं असीम है । उसकी शक्ति वा सामर्थ्य में यह सम्पूर्ण विश्व समाया हुआ है । पूर्ण ज्ञानी होने से वह निज शक्ति वा सामर्थ्य का कभी दुरुपयोग नहीं करता । शून्य विज्ञानमूल कार्यों का अनुष्ठान उसके लिये कल्पना की पहुँच से भी वाहर है । आओ ! हम सब भक्ति-भाव से अपने मन-मन्दिर में ज्ञान का दीपक जलावें और अन्तर्हित दिव्य-प्रकाश की प्रतीति के निमित्त उस परमसखा का आराधन करें ।

वरुणः प्राविता भुवन् ।
मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ।। ऋ० १-२३-६

शब्दार्थ—(वरुणः) वरण करने योग्य परम-पावन प्रभु (प्राविता) विशेषरूपेण रक्षा करने वाला (भुवन्) है (मित्रः) मृत्यु से बचाने वाला (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा साधनों द्वारा (नः) हमारे लिये (सुराधसः) उत्तम जीवन सामग्री को (करतां) प्राप्त कराने वाला हो ।

भावार्थ—परमात्मदेव सबसे श्रेष्ठ और महान् होने तथा परम-पावन और जीवनदाता होने के कारण हम सब के लिये वरण किये जाने योग्य है । उसकी रक्षा के साधन अनन्त और अपार हैं जिनके द्वारा वह सदा हमारी रक्षा करने वाला है । वह अहेतुक दयासिन्धु निश्चय ही भारी संकट और विपत्तियों में भी हमारी रक्षा करनेहारा है ।

अपने उपासकों की वह सदा रक्षा करता, पतन के कूप से उनको बचाता और प्रशस्त कल्याणकारी मार्ग से प्रगति करने की सतत प्रेरणा देनेहारा है । परमात्मा हमारा ऐसा सखा है जो कभी विलग नहीं होता । हम भले ही उसको भूल जांय किन्तु वह कभी हमको भूलने वाला नहीं ।

प्राणि-मात्र के निर्वाह के निमित्त नाना प्रकार के उत्तमोत्तम पदार्थों की रचना करता, भौतिक एवं आध्यात्मिक विभूतियों से हमको सदा युक्त करने वाला है ।

उसके असंख्य दया, करुणा, कृपा, अनुकम्पा आदि के हस्त सदा प्राणि-मात्र के हित प्रसारित रहते हैं ।

प्रभो ! हमें वह सद्बुद्धि प्रदान करो कि जिससे हम आपके सच्चे उपासक बन जांय । प्रकृति-पूजा से ऊपर उठ कर हम इस जीवन में आपके ही पुजारी बन जांय ।

वय सोम व्रते तव ।
मनस्तनूषु विभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ।। ऋ० १०-५७-६

शब्दार्थ—(सोम) हे जीवन-रस (वयं) हम (प्रजावन्तः) इन्द्रिय आदि श्रेष्ठ प्रजावाले (तनूषु) शरीरों में (मनः) मन को (विभ्रतः) निगृहीत करते हुए (तव) आपके (व्रते) पावन व्रत में (सचेमहि) अपने को युक्त करते हैं।

भावार्थ—मानव जीवन को सरसाने वाले प्राणनाथ प्रभु ने हमें वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि विचित्र प्रजाओं से युक्त किया है। हम अपनी इन अष्ट-चक्रा, नवद्वारा पुरियों में इन प्रजाओं का सम्यक् प्रकार से पालन करेंगे इनको कभी भूल कर भी गलत रास्ते पर न जाने देंगे और इनके बल का क्षय भी न होने देंगे।

प्रभो! आपने हमको अद्‌भुत मनस्तत्व प्रदान किया हुआ है जिसके द्वारा हम अपनी इन प्रजाओं का सम्यक् नियन्त्रण करेंगे। आपने जो दिव्य पथ प्रदर्शित किया है सदा उस पर ही इन प्रजाओं को चलावेंगे।

प्रभो! आप व्रतपति हैं। व्रतों का पालन करनेहारे हैं। हम भी अपने जीवन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि व्रतों का अनुष्ठान करने वाले बनेंगे। हम भूलकर भी कभी इन व्रतों की अपने जीवन में उपेक्षा नहीं करेंगे। अपितु पूर्ण-निष्ठा और मनोयोगपूर्वक इन व्रतों के साधने में हम आपसे बल की याचना करेंगे। प्रभो! आप व्रतपति हो जहाँ अपने व्रतों का विस्तार पालन करनेहारे हो वहाँ हम अपने अनुचरों के जीवन-व्रतों के अनुष्ठान में हमारे अन्दर बल का सञ्चार करने वाले भी हो।

प्रभो! हमें वह शक्ति प्रदान करो कि जिससे हम इन व्रतों के पूर्णतया पालन करने में समर्थ बन जांय। आपकी अमृत छाया में विचरण करते हुए और श्रद्धा समन्वित होकर आपकी शरण में सदा रहते हुए हम निश्चय ही अपने जीवन का उत्थान करेंगे, जीवन में ऊँची-से-ऊँची उड़ान उड़ेंगे और आध्यात्मिक मद में मस्त होकर सदा झूमा करेंगे।

वाजे वाजे हवामहे ।
योगे योगे तवस्तरं ।
सखायमिन्द्रमूतये ॥ सा० १ । ७ । ६ ।

शब्दार्थ—(योगे योगे) निष्काम कर्मों के कुशलतापूर्वक अनुष्ठान करने में (वाजे वाजे) जीवन के प्रत्येक संग्राम में (तवस्तरं) महान् शक्ति-शाली (सखायं) समान ख्याति वाले शुद्धचैतन्य, मुक्तस्वभाव आत्म-तत्त्व (इन्द्रं) परमेश्वर्यवान् प्रभु का (ऊतये) रक्षा एव उत्थान के निमित्त (हवामहे) हम सब मिलकर आवाहन करते हैं।

भावार्थ — देश, जाति, राष्ट्र एवं संसार के उत्थान के लिये निष्ठापूर्वक श्रेष्ठतम कर्मों का अनुष्ठान करना मानव का धर्म है। मानव जीवन तो निश्चय ही एक महान् संग्राम का जीवन है। निरन्तर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि असुरों से लोहा लेना और अपनी इस विचित्र रचनामयी दैवी देह को अयोध्या अर्थात् युद्धों से शून्य बनाना मानव जीवन की साधना है। इस धर्मानुष्ठान एवं साधना में सफलता लाभ करने के लिये मानव को अपने से महान् पराक्रमी, महान् ज्ञानी एवं महान् बलशाली व्यक्ति के सहयोग की आवश्यकता है और परमात्मदेव निश्चय ही अतुलित पराक्रम, ज्ञान एवं शक्ति के भण्डार हैं, संसार के समस्त ऐश्वर्य पर उनका एकछत्र शासन सदा रहता है और ऐसे वह परमात्मदेव सदा हमारे साथ ही रहने वाले अर्थात् हमारे जीवन के साथी हैं। ऐसे उस परमसखा को विसराकर किसी अन्य अल्प ज्ञान व बलादियुक्त मानवी शक्ति का सहारा तकना और उससे सहायता की कामना करना अथवा उसको जीवन सखा व पथ-प्रदर्शक बनाना भारी भूल है।

दया, करुणा, व मैत्री के अतुलित भण्डार प्राणनाथ प्रभु तो प्राणीमात्र की सदा रक्षा करते और सत्पथ का उसको सदा प्रदर्शन करानेहारे हैं। हम उनको विसराकर कहो अन्य किसी की शरण में जावें। कहो कौन है जो निकट संकटों में हमारा सदा साथ देता, निराशा निशा में डूबते हुओं का सहारा बनता और संसार सागर को तरने की सामर्थ्य प्रदान करता है। अतः आओ हम सब मिलकर अपने जीवन के एकमात्र प्रबलतम सम्बल उस प्यारे सखा का अनन्य भाव से अपने मन-मन्दिर में वन्दन करें।

वायवाहि दर्शते ।
मे सोमा अरंकृताः ।
तेषां पाहि श्रुधिहवम् ॥ ऋ० । १ । २ । १

शब्दार्थ—(वायो) संसार को गति देने वाले, अत्याचारियों का विध्वंस करने वाले, सृष्टि के रचयिता और संहारक प्रभो । (आयाहि) मेरे मन मन्दिर में प्रकट हो (दर्शते) दिव्य दर्शन के लिये (मे) मेरी (सोमा) आध्यात्मिक जीवन की मादकताएँ (अरंकृता) अलंकृत हैं। (तेषां) इनका (पाहि) रक्षण करो (हवं) हमारी प्रार्थना को (श्रुधि) सुनो।

भावार्थ—प्रभो ! आप सकल संसार को गति देने वाले और अन्यायी अत्याचारी पातकियों का संहार करनेवाले हो। इस संसृति के स्रष्टा और विनाश कर्त्ता आप ही हो। आप ही अपने सहज स्वभाव से प्राणीमात्र के कल्याणार्थ इस सृष्टि की रचना करते और समय आने पर इसको पुनः आद्या प्रकृति में परिणत कर देते हो।

मैंने अपने जीवन में व्रतों की साधना द्वारा एवं भक्तियोग के सतत अभ्यास द्वारा आध्यात्मिक मादकता (मस्ती) का सम्पादन किया है। संसार की कोई वस्तु चाहे वह कितनी भी मनमोहक क्यों न हो अब मुझको अपनी ओर आकर्षित नहीं करती। बस मैं तो अब इस दिव्य मादकता रूपी अमृत सागर की तरंगों में आनन्द विभोर रहने का अभ्यासी बनने का इच्छुक हूं।

भगवन् ! अब आप मेरे इस मन मन्दिर में दर्शन क्यों नहीं देते ? मैं आपके दिव्य दर्शन का प्यासा न जाने कब से आपकी बाट जोह रहा हूँ। कृपालु देव ! आओ और अपने पावन दर्शन से अपने इस विनीत उपासक को कृत्कृत्य करो।

प्रभो ! आप व्रतपति हो। मेरे इन व्रतों की रक्षा करो और आध्यात्मिक मादकता को मेरे जीवन में सदा के लिये तरंगित कर दो।

प्रभो ! आप तो चित्रश्रवस्तम हो अर्थात् विचित्र प्रकार से अपने भक्तों के मनों के छिपे भावों को जानने वाले और उनकी मूक वाणी का श्रवण करने वाले हो।

प्रभो ! हमारे इस स्तवन को सुनो। हमारी पुकार को सुनो और अपनी कृपा का हमें पात्र बनालो।

विश्वानि देव सवितर ।
दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ ऋ० । ५ । ८२ । ५

शब्दार्थ—(देवसवितर) सकल ब्रह्माण्ड के रचयिता दिव्य प्रकशस्वरूप प्रभो। (विश्वानि) सकल (दुरितानि) दुर्गुणों को (परासुव) दूर हटा दो और (यद्) जो (भद्रं) कल्याणकारी भावनाएँ हैं (तत्) वह (नः) हमारे अन्दर (आसुव) भरदो।

भावार्थ—परमात्मदेव सकल विश्व को उत्पन्न करने वाले एवं प्राणीमात्र के लिये असंख्य उपकारी वस्तुओं का निर्माण करने हारे हैं। अज्ञानान्धकार को विदीर्ण कर ज्ञान की ज्योतिः जगमगाने वाले हैं।

पूर्णज्ञानी एवं नित्यमुक्त स्वभाव होने के कारण वह अपापविद्ध हैं अर्थात् पापों को छू तक नहीं गये हैं। वह तो प्राणीमात्र के पाप, ताप और संताप और विलापों के हरने वाले हैं। प्रभु के गुणों का कीर्तन और उसकी भक्ति पाप ताप के निवारण करने में अमोघ छत्र का काम करती है।

परमात्मदेव तो मानव के हृदय में सदा भद्र भावनाओं का सञ्चार ही करने वाले हैं। वह दिव्य और पुनीत विचार जो मानव को पापों से हटाकर सुकर्मों के अनुष्ठान में प्रवृत्त करने वाले हैं, पतन के भयंकर गर्त से निकालकर उत्थान के उच्च शिखर तक पहुंचाने में उसकी सदा सहायता करने वाले हैं उन सब का अनादि केन्द्र तो परमदेव परमात्मा ही हैं। उस ही दिव्यप्रकाश स्तम्भ से तो यह सब भद्र भावना रूपी प्रकाश की किरणें मानव कल्याण हित प्रसारित होती हैं।

हे प्राणनाथ दयालु देव ! दया करो। पापों और अभद्र भावनाओं को हमसे दूर भगा दो और भद्र भावनाओं से हमारे मनों और बुद्धियों को ओत-प्रोत कर दो।

विष्णोः कर्माणि पश्यत ।
यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ऋ० १ । २२ । १६

शब्दार्थ—(विष्णोः) विश्व-व्यापक परमात्मा के (कर्माणि) अद्भुत दिव्य कर्मों को (पश्यत) देखो (यतः) जिससे (व्रतानि) अहिंसा, सत्य आदि दिव्य व्रतों का (पस्पशे) प्रकाश हुआ है। (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा का वह (युज्यः) सदा साथ रहने वाला (सखा) मित्र है।

भावार्थ—प्रत्येक जीवात्मा के अन्दर और प्रकृति के कल्याण में वह परमात्मदेव रमे हुए हैं। समस्त लोक लोकान्तरों के बाहर और भीतर वह अपनी निज सत्ता से सदा विद्यमान रहते हैं। परमात्मदेव के सृष्टि-रचना, पालन, संहार, न्यायव्यवस्था आदि अद्भुत और विचित्र कर्म हैं। मानव का कर्त्तव्य है कि वह उन सब का बोध प्राप्त करने में सतत प्रयत्नशील रहे।

संसार के सकल सद्गुण और पवित्र विचार उस ही परमात्मा से सदा प्रसारित रहते हैं। सकल भद्रभावनाओं का मानव के हृदय में सञ्चार करने वाला वह अहेतुक दया-सिन्धु परमात्मा ही है। अहिंसा, दया, करूणा, सत्य, प्रेम आदि दिव्य व्रतों का केन्द्र परमात्मदेव ही तो सनातन से है। मानव के कल्याणार्थ इन महान् व्रतों का सञ्चार वह प्यारा प्रभु सदा उसकी आत्मा में करने हारे हैं।

जीवात्मा भी स्वभाव से शुद्ध चेतन है इसके अन्दर भी दैवी सम्पदा स्वभाव से आंशिक रूप में विद्यमान रहती है। परमात्मदेव की उपासना से उस सम्पदा का सवर्धन और विकास होता तथा जीव की स्वाभाविक अल्पज्ञता के कारण जो अज्ञान उसको घेरे रहता है वह तिरोहित होने लगता है। परमात्मदेव तो इस जीवात्मा का अभिन्न सखा है। कभी भी तो वह इससे विलग नहीं होता। जिसने इस अन्दर बैठे अपने अभिन्न मित्र को पहचान लिया उसका अभ्युदय और उत्थान सुनिश्चित है।

वृषभं चर्षणीनां ।
विश्वरूपमदाभ्यम् ।
बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥ ऋ० । ३ । ६२ । ६

शब्दार्थ—(चर्षणीनां) समस्त मानवों को (वृषभं) बल के देने हारे (विश्वरूपं) सकल विश्व को रूप प्रदान करनेहारे अर्थात् रचने हारे (अदाभ्यं) कभी नष्ट न होने वाले (वरेण्यं) वरण करने योग्य (बृहस्पतिं) सब के पालनकर्त्ता परमात्मा का हम आवाहन करते हैं।

भावार्थ—प्रभो ! आप अत्यन्त बलशाली हो दिव्य शक्तिके आप अतुलित आगार हो। सकल मानवी प्रजा के आप ही जीवनाधार हो। अपने प्रजाजनों के लिये शारीरिक एवं आत्मिक बलों के आप ही दातार हो। दीनदुःखी दरिद्र निर्धन मानव के जीवन के तो आप ही एकमात्र सहारे हो। उनकी दीनता, दुःख, दारिद्र्य और निर्धनता को मिटाने वाले एकमात्र प्रभो आप ही हो।

इस सारे संसार को नाम रूप के देने वाले, विश्वरूपा नाना प्रकार की सृष्टि की सृजना करने वाले आप ही हो।

प्रभो ! आप तो अविनश्वर, अखण्ड, अक्षर और अविनाशी हो। प्रभो ! आप अत्यन्त कमनीय, स्पृहणीय एवं सौन्दर्य के भण्डार एवं एकमात्र वरण करने योग्य हो। आपको विसारकर और किसकी हम अपने जीवन में कामना वा स्पृहा करें। आपको छोड़कर और किसकी चाह वा लगन हमारे अन्दर हो। और कौन है जिसके लिये हम अपने मानस नेत्रों के पलड़े बिछावें।

आपसे सुन्दर और कौनसी वस्तु इस संसार में है जिसको निरन्तर मानस नेत्रों से अथवा ज्ञान चक्षु से हम निरखा करें। प्रभो ! आप तो दिव्य ज्ञान, बल, तेज और सौन्दर्य के आगार हो। हम आपको विसराकर और किसका अपने इस जीवन में सहारा पकड़ें। निश्चय आप ही तो एकमात्र हमारे इस जीवन के आधार हो। बस हमें एकमात्र आपका ही इस जीवन में सहारा है।

वृषा ह्यसि भानुना ।
द्युमन्तं त्वा ह्वामहे ।
पवमान स्वर्द्दृशम् ।। साम० ५ । १० । ४

शब्दार्थ—(भानुना) दिव्यतेज के कारण (वृषा) अत्यन्त पवित्रता के केन्द्र (हि) निश्चय करके (असि) हो (पवमान) पवित्रता का सञ्चार करने हारे (द्युमन्तं) अत्यन्त प्रकाश स्वरूप (स्वर्द्दृशम्) दिव्यसुख को प्राप्त कराने हारे (त्वा) तुझको (ह्वामहे) पुकारते हैं।

भावार्थ—प्रभो ! आपका भानु भर्ग अर्थात् दिव्य तेज अदभुत् और महान् है। सकल दुर्गुणों का विनाश करने वाला, पाप वृत्तियों का क्षय करने वाला तथा पापियों को भस्म करने वाला है। आप तो स्वयं अनिर्वचनीय पवित्रता के केन्द्र हो और अपवित्रता का विनाश कर निश्चय ही दिव्य पवित्रता का विस्तार करने वाले हो।

जो उपासक ध्यान योग द्वारा आपका सानिध्य (कुर्व) उपलब्ध कर लेता है वह आपके इस तेज से तेजस्वी बन जाता, आपके महान् ओज से ओजस्वी बन जाता, अपके दिव्य सामर्थ्य से पराक्रमी और सहनशील बन जाता है।

प्रभो ! आपकी ज्योतिः, प्रकाश वा तेज निश्चय ही दिव्य, महान् और विचित्र है। आपका तेज लोक लोकान्तारों तक में सूर्य, ध्रुव, स्वाती आदि तक में व्याप रहा है। आपके ही तेज से तो यह सब तेजोमय होकर जगत् में तप रहे हैं। प्रभो ! आप दिव्य सुख प्रसन्नता, हर्ष, उत्साह और आनन्द के स्रोत हो। आपका सानिध्य ही हमें यह सब दिव्य सुखादि प्राप्त कराने हारा है। दिव्य-आनन्द की उपलब्धि एवं अनुभूति तो हमें आपकी ही कृपा से होने वाली है। हम सब अपने अन्दर दिव्य पवित्रता का सम्पादन कर और भक्तिभाव से युक्त हो आपका आवाहन करते हैं। मन मन्दिर में आपकी ज्योतिः जागृत करते हैं। प्रभो ! कृपा करो और अपने दिव्य दर्शन से हम अपने उपासकों को कृत्कृत्य करो।

शन्नो देवीरभीष्टय।
आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ साम० १।३।१३

शब्दार्थ—(देवीः) दिव्य गुणों से युक्त (आपः) सर्वव्यापक परमात्मदेव (नः) हमारे लिये (शं) कल्याण के करने हारे हों। (अभीष्टये) अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के निमित्त (पीतये) आत्म पिपासा की शान्ति के निमित्त (भवन्तु) होवें (नः) हमारे (अभि) सब ओर (शंयोः) दिव्य सुख व शान्ति की (स्रवन्तु) वृष्टि होवे।

भावार्थ—रोम-रोम में रमण करने वाले घट-घट वासी अविनाशी परमात्मदेव दिव्य गुणों एवं शक्तियों के महान् भण्डार हैं। वह ही हमारे सच्चे एवं परम कल्याणकर्त्ता हैं। हमें मङ्गल के देने वाले एवं दिव्य शक्ति के प्रदाता हैं।

मानव की चिर अभिलाषा दिव्य सुख एवं आनन्द की प्राप्ति है। मानव जीवन की वास्तविक तृप्ति तो दिव्य मादकता अर्थात् मस्ती में ही है। हम इस जीवन रस का अर्थात् मादकता का ध्यान योग द्वारा अपने अन्दर सम्पादन करने वाले बन जाँय बस यह ही हमारी कामना है। यह दिव्य मादकता प्रभु की कृपा बिना निष्पन्न होने वाली नहीं। हम प्रातः और सायं, रात्रि और मध्याह्न में आपने अन्दर श्रद्धा का जागरण करें। सत्यस्वरूप परमात्मदेव के प्रति अगाध प्रेम को अपने अन्दर उत्पन्न करने वाले बन जाँय।

जब हमारे जीवन में श्रद्धा का वास होगा तो दिव्य मादकता का स्रोत फूट निकलेगा और हमारे चहुँ ओर पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में तथा ऊपर और नीचे सर्वत्र ही दिव्य सुख, शान्ति, समृद्धि की वर्षा होने लगेगी।

प्रभो! हमें अपना कृपापात्र बनालो और हमारे जीवन को अपनी अमृत वर्षा से सरस कर दो। बस यह ही हम याचकों की एकमात्र आपसे विनति है।

स नो विश्वाहा सुक्रतुः ।
आदित्यः सुपथा करत् ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ।। ऋ० १ । २५ । १२

शब्दार्थ—(सः) वह परमात्मा (विश्वाहा) मानव संसार को सत्य ज्ञान का बोध कराने हारा (सुक्रतुः) श्रेष्ठतम कर्मों का यज्ञों का विधाता (आदित्यः) आज्ञानान्धकार का नाशक (नः) हमारे लिये (सुपथा) श्रेष्ठतम मार्ग का (करत्) विस्तार करें और (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों का (प्रतारिषत्) सम्यक्तया उद्धार करें।

भावार्थ—वह परमात्म देव निश्चय संसार के सर्व मानवों के हित सत्य ज्ञान का प्रकाश करने वाला है। किसी जाति वा देश विशेष के लिये ही उसने सत्यज्ञान प्रकाशित किया हो ऐसा नहीं। श्रेष्ठतम कर्मों का उसका विवान भी सार्वजनीन है। उसके समस्त कर्म निश्चिय ही विशुद्ध यज्ञ रूप हैं। जनहित, प्रजाहित अथवा अपनी सन्तति के हित ही वह सृष्टि रचना आदि परोपकार रूप यज्ञों का करने हारा है।

अज्ञान अन्धकार को विदीर्ण कर दिव्य प्रकाश की ज्योतिः पवित्र आत्माओं के अन्दर जागृत करना उसका निज स्वभाव है। प्रभो! हमें सत्य मार्ग का पथिक बना दो। आपकी कृपा से हम सब सत्यपथ पर चलने वाले बन जांय और कभी भूल कर भी कुपथ पर पग न धरें।

प्रभो! आप ही हमारी इस जीवन नौका को इस संसार सिन्धु में जो काम क्रोध, लोभ मोह आदि गज, ग्राह और आवर्तों से युक्त है, खेने वाले हो। आपकी सहायता से ही हम इस सिन्धु का पार पा सकते हैं। नाथ! हमारे इस जीवन का उद्धार कर दो और हमें पतन के गर्त से बचने की शक्ति एवं सद्बुद्धि प्रदान कर दो। हम श्रद्धा समन्वित होकर आपकी शरण में आए हैं। एक मात्र आपके ही हम शरणागत हैं।

स नः पितेव सूनवे ।
अग्ने सुपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तेय ।। ऋ० १ । १ । ६

शब्दार्थ—(अग्ने) ज्योतिः स्वरूप विश्वनियन्ता प्रभो (सूनवे) पुत्र के लिये (पिता) पिता के (इव) समान (सः) वह आप (नः) हमारे लिये (सुपायनः) श्रेष्ठ पालन कर्त्ता (भव) होवो (नः) हम सबों को (स्वस्तये) कल्याण से (आसचस्व सम्यक्) युक्त करो।

भावार्थ—जिस प्रकार लोक में जन्मदाता पिता को अपनी सन्तान के प्रति प्रेम प्रीति व प्यार होता है और उनके हर प्रकार के उत्थान में वह प्रयत्नशील होता है उसी प्रकार वह प्यारा प्रभु भी हमें इस मानव देह में अवतरित करता, हम अपने अमृत पुत्रों से प्रेम करता, हमारी हर प्रकार से रक्षा करता और प्रगति-पथ पर चलने की सदा प्रेरणा देता है। प्रभो! आप तो निश्चय ही हमारे परम रक्षक, नियामक, नेता और नियन्ता हो। कल्याण कर्त्ता, मंगल विधाता, सुख सम्पत्ति और सौमनस्य के दाता हो।

प्रभो! आपने ही तो हमारे लिये इस जीवन-रथ का निर्माण किया है, दिव्य शक्तियों और विभूतियों से इसे संयुक्त किया है। संसार यात्रा को सुगमता के साथ पूरा करने सम्बन्धी सकल सुविधाओं से इसे युक्त किया है और कभी न बुझने वाला ज्ञान का दीपक इसमें जलाया है।

प्रभो! मुझे वह सद्बुद्धि प्रदान करो कि मैं इस जीवन-रथ को कभी नष्ट, भ्रष्ट और बरबाद करने वाला न बनूं। सदा संयम और सदाचार से इस की रक्षा करते हुए जीवन यात्रा के पथ पर प्रगति करने वाला बन जाऊं। अपने जीवन में दिव्य मादकता भर कर हर्ष, उल्लास और उमंगों से सदा इसको युक्त रखते हुए आगे-ही-आगे बढ़ना चला जाऊं और आपकी कृपा का पात्र बनकर अपने जीवन के लक्ष को सिद्ध कर पाऊं।

समस्य मन्यवे विशः ।
विश्वा नमन्तकृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ।। ऋ० ८-६-४

शब्दार्थ—(समस्य) समस्त (विशः) प्रजाओं के (मन्यवे) मान्यता के केन्द्र को (विश्वा) सारे (कृष्टयः) प्राणी (नमन्त) नमन करते हैं (इव) जिस प्रकार (सिन्धवः) नदियाँ (समुद्राय) सागर के लिये नमन करती हैं ।

भावार्थ—असंख्य योनियों में निवास करने वाले जीवों का एकमात्र मान्यता का केन्द्र बिन्दु वह ज्योतिः स्वरूप परमात्वदेव ही है । असंख्य प्राणी मूक भाव से उस प्रणानाथ प्रभु का अर्चन करते और मानव देहों में विराजमान जीव नाना स्रोतों द्वारा उसकी महिमा का बखान करते हैं । संसार की विभिन्न भाषाओं और विभिन्न विधियों द्वारा उस प्रभु का वन्दन कर मानव अपने जीवन को कृत्कृत्य करता है । संसार के सर्व महामानव एक स्वर से इस जगतितल पर उस प्रभु के दैवी साम्रज्य की स्थापना का प्रयत्न करते हैं । नरक से इस धरा-धाम को स्वर्ग बनाना ही उनके जीवन की साधना होती है ।

मानव अनृत को त्याग कर सत्य का उपासक बन जायें, अन्धकार से नाता तोड़कर दिव्य ज्योतिः का पुजारी बन जाय, मृत्यु के पाश से निकलकर अमृत पुत्र बन जाय बस यही महापुरुषों के जीवनों की साधना हुआ करती है ।

जिस प्रकार संसार की विभिन्न नदियाँ नाना क्षेत्रों में बहती हुई असंख्य कगारों को तोड़ती और वृक्षों को उपाड़ती हुई सागर में पहुँच कर शान्त और समरत हो जाती हैं उस ही प्रकार संसार के समस्र विचारक नाना भाषाओं और स्तोत्रों द्वारा उस दिव्य ज्योतिः को अपने अन्दर जागृत करते हुए और उस जीवन रस का स्तवन हुए उस ही में लीन होकर तन्मय होकर दिव्य शान्ति और सुखका अनुभव करते हैं प्रभो ! हम सब आपके उपासक आपके आश्रित होकर श्रद्धा पूर्वक दया, प्रेम और करुणा के महान् सागर आपको नमन करते हैं ।

सहस्राक्षो विचर्षणिः ।
अग्निर्वक्षांसि सेधति ।
होता गृणीत उक्थ्यः ।। ऋ० १-७६-१२

शब्दार्थ—(अग्निः) विश्व नियन्ता परमात्म देव (सहस्राक्षः) अनन्त दर्शन शक्ति वाला (विचर्षणीः) सब ओर दृष्टि रखनेवाला (वक्षांसि) तेज और बलादि को (सेधति) हमारे अन्दर निहित करता है (होता) अन्तर्बोध कराने वाला (उक्थ्यः) हमारे स्तोमो को (गृणीत) ग्रहण करें।

भावार्थ—विश्वनियन्ता परमात्वदेव के नेत्र असंख्य हैं अर्थात् उसकी दर्शन शक्तियाँ अपार हैं। घट-घट वासी प्रभु प्राणियों के समस्त क्रिया कलापों विचार तरङ्गों, संकल्पों और विकल्पों के जाकने वाला है। उससे किसी भी प्राणी के हाव भाव छिपे नहीं। वह निश्चय सब कुछ जाननेवाला अर्थात् सर्वज्ञ है।

वह अपने भक्तों के हृदयों में आत्मिक बल का सञ्चार करता और विभिन्न बल, विक्रम, तेज, ओज आदि से युक्त करा है। उस प्यारे सखा ने हमारे अन्दर नाना शकियों का सञ्चार किया हुआ है और हसारी इस तन रूपी दैवी नौका को नाना प्रकार के यन्त्रों से युक्त किया है। प्रभु प्रदत्त इन शक्तियों एवं यन्त्रों का यदि हम आदर करने वाले अर्थात् सदुपयोग कर्त्ता बन जांय तो तो हमारा जीवन निश्चय ही उच्च और महान् होगा और हम इस मानव देह के धारण करने रूपी अपने लक्ष्य को सिद्ध कर सकेंगे।

वह प्रभु इस संसृति शाला में निवास करने वाले हम अपने अमृत पुत्रों की आन्तरिक पुकारों को सुनने वाला है और हमें अन्तर्बोध कराने हारा है। भक्ति भाव से ज्ञान पूर्वक हम जिन स्तोत्रों का पाठ करते हैं और उस प्रभु के गुणों का कीर्तन करते हैं वह व्यर्थ जाने वाले नहीं। हमारा प्राण धार साख निश्चय उनको सुनेगा और हमारे अभीष्ट को पूर्ण करेगा।

प्रभो ! हम पर अपनी कृपा का विस्तार करो और स्रोत्रों का श्रवण कर हमारे जीवन को कृत्कृत्य करो।

स हि विश्वानि पार्थिवान् ।
एको वसूनि पत्यते ।
गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ।। ऋ० ६-४५-२०

शब्दार्थ—(सः) वह परमात्मदेव (गिर्वणस्तमः) परमज्ञानी (अध्रिगुः) अप्रत्याहत गति (एकः) एक (हि) ही है । वह (विश्वानि) समस्त (पार्थिवान्) पृथिवी लोक सम्बन्धी (वसूनि) विभूतियों को (पत्यते) हमें प्राप्त कराता है ।

भावार्थ—वह हमारा प्राण प्यारा सखा परमज्ञानी और वेद वाणी का पति है । सनातन वेद ज्ञान का परम सागर है । उसकी शक्ति और सामर्थ्य में वेदका सम्पूर्ण ज्ञान निहित है । वह अद्भुत और अपरिमेय शक्तियों का भण्डार है ।

ससार की कोई भी शक्ति कभी उसका सामना कर नहीं सकती । उसकी ही शक्ति के बल पर तो यह सकल संसार अपनी गति से सदा चलता रहता है ।

संसार की सकल विभूतियों एवं ऐश्वर्यों का निर्मात्ता वह ही है । प्रणीमात्र के कल्याणार्थ ही उसने इन हबका सृजन किया है ।

संसार की सर्व आध्यात्मिक आधिभौतिक एवं आधिदैविक विभूतियों का संरक्षक तथा स्वामी वह ही एक मात्र प्यारा प्रभु है । उस अहेतुक दयासिन्धु परमात्वदेव ने हम मानवों पर दया करके बुद्धि तत्त्व से हमें विशेष रूप से संयुक्त किया है । हमें सदसद् का विवेक प्रदान किया है । अनृत से दूर रहने और ऋत की उपासना करने की दिव्य प्रेरणा भी वह दयालु देव सदा अन्दर बैठा करता रहता है । हम सब भक्ति भावों से समन्वित होकर परम दयालु देव के उपासक बन जावे बस यही ही हमारी एक मात्र कामना है ।

प्रभो ! कृपा करो और हमें अपना सच्चा अनुचर बना लो ।

९९

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं ।
वर्धमानो वचोविदः ।
सुमृडीको न आविश ॥ ऋ० १ । ९१ । ११

शब्दार्थ—(सोम) प्यारे जीवन-रस (वचोविदः) वैदिक गीतिकाओं के सार को समझने वाले (वयं) हम उपासक (त्वा) तुझको (गीर्भिः) स्तोत्रों द्वारा (वर्धयामः) ज्ञान नेत्रों द्वारा तेरे दिव्य प्रकाश का अपने अन्दर संवर्धन करते हैं। (सुमृडीकः) तू परम दयालु है (नः) हमारे हृदय में (आविश) प्रकाशित हो।

भावार्थ—अध्यात्म शास्त्र का सार-तत्व प्राणनाथ प्रभु का सम्यक् ज्ञान और दर्शन करना है। वेद की पावनी ऋचाओं का ज्ञान ही हमारा जीवन संगीत है। हम इस दिव्य संगीत द्वारा अपने उस जीवन-धन का, जीवन को सरसाने वाले उस दिव्य मादकता के स्रोत सोम का श्रद्धा समन्वित हो आराधना कहते हैं। उसकी दिव्य आनन्द रूप छवि का अपने हृदय-मन्दिर में उत्तरोत्तर संवर्धन करते हैं। वह छवि पूर्ण तेज और प्रकाश से हमारे अन्दर चमकने लगे बस यही हमारी जीवन साधना है।

प्रभो ! आप अत्यन्त दयालु हो। निज भक्तों पर तो आपकी दया, कृपा और अनुकम्पा सदा बनी रहती है।

दयालु देव ! प्रसन्न हो जाओ और मेरे अन्तस्तल से निकले हुए स्तोत्र का श्रवण कर मुझे अपना दिव्य दर्शन दो। आपके दिव्य आनन्द रूप का दर्शन कर मैं उसकी मादकता में बस तन्मय हो जाऊँ, तन्मय हो जाऊँ।

१००

सोम रारन्धि नो हृदि ।
गावो न यवसेष्वा ।
मर्य इव स्व ओक्ये ॥ ऋ० १ । ९१ । १३

शब्दार्थ—(सोम) हे प्यारे जीवन-धन (नः) हमारे (हृदि) हृदय को (रारन्धि) प्रेम प्रकाश से युक्त कर दो (न) जिस प्रकार

(गावः) गौवें (यवसेषु) जौ के खेत में (आ) समन्तात् रमण करती हैं और (मर्य) मानव (स्व) अपने (ओक्ये) गृह में रमण करता है।

भावार्थ—जिस प्रकार गौ जौ के खेत में अत्यन्त प्रीति के साथ रमण करती और अबाध गति से उसमें बिहार करती है तथा जिस प्रकार एक मानव अपने पुत्र कलत्र युक्त गृह में अत्यन्त प्रीति के साथ निवास करता है उसी प्रकार मैं अपने उस प्राण प्यारे प्रभु के दिव्य प्रकाश से प्रकाशित मन-मन्दिर में रमण करने वाला बन जाऊँ।

सोम तो मेरा जीवन धन है मेरे जीवन का सार है और इस मेरे जीवन का रस है। मेरी यह चिर आकांक्षा है कि वह मेरे इस हृदय मन्दिर में अब अधिक काल तक ओझल बन कर न रहे अपितु प्रकट होकर अपने दिव्य दर्शनों से मुझे कृतकृत्य करें। मुझ प्यासे चातक को अपने अमृत बिन्दु का पान करा कर अमर बना दे।

मैं तो बस अब उस प्यारे सोम के दिव्य-दर्शन के निमित्त अपने ज्ञान नेत्रों के पलके बिछाऊंगा और जब तक उसकी मोहनी छवि, दिव्य मादकता सरसाने वाली ज्योति का दर्शन न कर लूंगा चैन से न बैठूंगा। निश्चय मैंने अब यह व्रत ठान लिया है और प्राणपण से इसको पूरा करके ही रहूंगा।

१०१

स्वादिष्ठया मदिष्ठया।
पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः॥ ऋ० ९। १। १

शब्दार्थ—(सोम) हे सोम (स्वादिष्ठया) अत्यन्त मीठी (मदिष्ठया) अत्यन्त मदकारी (धारया) धारा के द्वारा (पवस्व) हमें पवित्र कर (सुतः) प्रादुर्भूत हुआ तू (इन्द्राय) इन्द्रियों के राजा जीवात्मा के (पातवे) रक्षा का हेतु होवे।

भावार्थ—हे मन-मन्दिर के अधिष्ठातृ देवता प्यारे जीवन-धन। तेरा पेय-रस अत्यन्त रसीला व अत्यन्त नशीला है। मानव जीवन में दिव्य मादकता को सरसाने वाला है। जिसने अपने इस जीवन में एक बार भी उसका एक घूंट पी लिया उसे संसार की सुध-बुध नहीं रहती अर्थात् इस

संसार की मोह-माया उसे नहीं सताती। संसार जिसे दिन कहता वह उसके लिये रात्रि है और संसार की दृष्टि में जो रात्रि है वह उसके लिये दिन हो जाता है। वह तो एक विचित्र पागल बन कर अपनी मस्ती में रहने लगता है। एक तरंग है जिस पर वह सवार रहने लगता है। कैसा पवित्र और कैसा अद्भुत यह निराला नशा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह कोई भी फल ऐसा नहीं जो इसके साथ लग सके।

इस नशे का सेवन साधारण जन नहीं अपितु राजा लोग ही कर सकते हैं। मैं अपनी इस अष्टचक्रा नव-द्वारा नामक देव-पुरी का राजा हूँ और यह राज-पाट मुझे मेरे प्यारे पिता ने सौंपा है किन्तु जब तक मैं इसे अयोध्या न बनाऊँगा अर्थात् काम क्रोधादि असुरों को इससे न मार भगाऊँगा मैं राजा कैसा। जब तक वाक् श्रोत्र, चक्षु आदि मन्त्रियों पर मेरा पूर्ण नियन्त्रण नहीं मुझे राजा मानने कौन लगा है।

मैं निश्चय ही राजा बनूंगा और संयम रूप अपने राज्य तन्त्र को दिव्य बनाऊँगा। तब ही तो मैं इस सोम का प्रभु प्रेम के इस अद्भुत संजीवन-रस का जीभर पान कर सकूंगा। सोत्र सरोवर में जी भर गोते लगा सकूंगा।

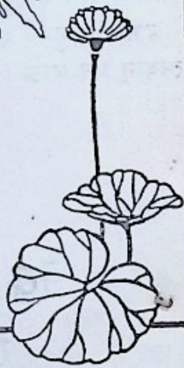
प्रभो! मुझे शक्ति दो कि मैं अपनी साधना द्वारा राजा अर्थात् आत्मवान् बन जाऊँ।

००

वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है



चारों वेदों के चुने हुए १००-१००
ईश्वर भक्ति के मंत्रों का संग्रह
अर्थ और भावार्थ सहित



जन ज्ञान प्रकाशन
नई दिल्ली

श्रावणी संवत २०२५

मूल्य केवल ३)

संपादक :--मुद्रक-प्रकाशक श्रीमती पंडिता राकेश रानी के लिए भाटिया कंपोजिंग एजेन्सी द्वारा भण्डारी प्रिंटिंग प्रेस, में मुद्रित व १५६७ हरध्यानसिंह रोड करौल बाग, ३१ नाई वाला करोलबाग नई दिल्ली ५ से प्रकाशित

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग
नई दिल्ली-५

श्रावणी संवत् २०२७

Regd. No.
D. 1631

वेद के प्रचार के लिए अधिक से अधिक बांटिए—रियायती मूल्य पर

१. **वेद-ज्योति**—चारों वेदों के चुने ईश्वर भक्ति के ४०० वेद मंत्रों की व्याख्या। स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती के चारों शतकों का संग्रह।
मूल्य ३) रु०। २० अगस्त १९७० तक २) रु०

२. **ज्ञान-प्रकाश**—सत्यार्थ-प्रकाश का सार : प्रभावशाली रूप में : पं० हरिशरणजी व पं० दीनानाथजी की लेखनी से मूल्य १.५०
१००) रु० सैंकड़ा। २० अगस्त १९७० तक ५०) रु० सैंकड़ा

३. **यज्ञ-प्रसाद**—महात्मा आनन्द स्वामी जी की लेखनी से।
मूल्य ४० पैसे। २० अगस्त १९७० तक २०) रु० सैंकड़ा

४. **विश्व को वेद का सन्देश**—भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार लिखित।
१०) रु० सैंकड़ा। २० अगस्त १९७० तक ८) रु० सैंकड़ा

५. **भारत की अवनति के ७ कारण**—आचार्य जगदीश विद्यार्थी एम० ए० लिखित। मूल्य ५० पैसे। ३५) रु० सैंकड़ा
२० अगस्त १९७० तक २०) रु० सैंकड़ा

६. **योग-जीवन**—मूल्य २) रु०। २० अगस्त १९७० तक ६०) रु० सैंकड़ा

यह सारे रियायती मूल्य दानी महानुभाव के १०००) रु० के दान से कम किए हैं। १०००) रु० दान का स्टाक पहले ही समाप्त हो गया तो घटे मूल्य पर साहित्य न भेज सकेंगें। अतः

अपना-अपना आदेश धन सहित आज ही भेजें।

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५.